सम्मति

वहाँ के जाट शासक सूरजमल के समय में ही भरतपुर राज्य की गणना उत्तर भारत की तत्कालीन गण्यमान्य प्रबल शक्तियों में होने लगी थी। यूरोपीय सेनानायकों को अपने आधीन नौकर रख कर उसके उत्तराधिकारी पुत्र राजा जवाहरसिंह जाट ने अपनी सेना तथा तोपखाने को और भी शक्तिशाली बना दिया था, जिससे उन्हें बंगाल, बिहार और उड़ीसा सूबों की दीवानी मिलने के तत्काल बाद अंग्रेजों ने भी उससे मैत्री स्थापित करने के प्रयत्न किये थे। किन्तु जवाहरसिंह जाट का यह शासन-काल तत्कालीन अराजकतापूर्ण संघर्षमय राजनीति तथा भारतीय सैनिक संगठन अथवा युद्ध-प्रणाली के लिये निर्णायक और युगान्तरकारी प्रमाणित हुआ, जिससे ईसा की १८वीं शती के उत्तरी भारतीय इतिहास में जाटों का अपना विशेष महत्त्व है।

अपने सुज्ञात ग्रंथ "हिस्ट्री ऑफ दी जाट्स" के पहिले खण्ड में स्वर्गीय डा० कालिकारंजन कानूनगो ने लगभग पचास वर्ष पूर्व ब्रज प्रदेश में जाटों की सत्ता के इस प्रारंभ, उत्थान, विकास और अवनति का क्रमबद्ध प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया था। तब से ईसा की १८वी शती में जाटो के इतिहास विषयक समकालीन प्रामाणिक आधार-सामग्री भी प्रचुर मात्रा में प्रकाश में आई है, जिसका आचार्य-प्रवर यदुनाथ सरकार ने अपने सर्वमान्य ग्रंथ "फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर" में बहुत-कुछ प्रयोग किया है, परन्तु दिल्ली मे अवस्थित मुगल साम्राज्य की केन्द्रीय सत्ता से ही संबंधित होने के कारण उसमे जाटो के इतिहास की यत्र-तत्र झलकियाँ ही देखने को मिलती हैं।

अतएव भरतपुर जाट राज्य के इतिहास और विशेषतया जवाहरसिंह के शासन-काल के इतिवृत्त के पुनर्लेखन की आवश्यकता पर कदापि दो मत नहीं हो सकते हैं। कुछ समय पहिले इस दिशा में कुछ प्रयत्न किये गये थे, किन्तु उनमें सारी महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक आधार-सामग्री का समुचित उपयोग नहीं किया गया है, और जवाहरसिंह जाट का विवरण तो संक्षेप में ही दिया है। इसीलिये उदयपुर विश्वविद्यालय में अपनी एम० ए० (उत्तरार्द्ध) परीक्षा के लिये "भरतपुर नरेश जवाहरसिंह जाट

और उसका काल (१७६३-६८ ई०)" विषय पर अपना शोध-निबंध लिखने का निश्चय कर मनोहरसिंह राणावत तदर्थ आवश्यक प्राथमिक महत्त्व की प्रामाणिक आधार-सामग्री के संकलन के लिये सीतामऊ भी आया था। उक्त परीक्षार्थ प्रस्तुत किये गये उस शोध-निबन्ध को ही संशोधित कर अब इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस शोध-निबंध को लिखने में मनोहरसिंह राणावत ने सन् १९७० ई० तक प्रकाशित नवीनतम आधार-सामग्री का भी पूरा-पूरा उपयोग किया है। क्या सूरजमल ने नाहरसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था ? जर्मन सेनानायक समरू जवाहरसिंह की सेवा में प्रथम बार कब पहुंचा था ? क्या तदनन्तर कुछ समय के लिये उसने जवाहरसिंह की नौकरी छोड़ दी थी ? जवाहरसिंह की मृत्यु कैसे और कब हुई थी ? आदि महत्त्वपूर्ण छोटे-बड़े प्रश्नों पर मनोहरसिंह ने सप्रमाण अपने सुस्पष्ट निर्णय दिये हैं, जो इस पुस्तक की विशेष उपलब्धियां हैं। किन्तु मूलत: शोध-निबन्ध होने के कारण ही उसके आकार-प्रकार, विवेचन-पद्धति आदि संबंधी तज्जन्य बाध्यताए इस पुस्तक में भी विद्यमान हैं। किन्तु इन अनिवार्य परिसीमाओं के होते हुए भी यह कृति उस देश-काल और विषय विशेष सम्बन्धी इतिहास के विद्वानों और संशोधकों के लिये अवश्य ही सहायक होगी। इसकी भाषा सरल और लेखन-शैली सीधी-सादी होने के कारण साधारण पाठकों को भी इस ग्रंथ से भरतपुर के इस जाट राज्य के उत्थान तथा जवाहरसिंह की सफलताओं अथवा विफलताओं की भी बहुत-कुछ जानकारी प्राप्त हो सकेगी। अत: यह पुस्तक पठनीय, अध्ययनीय और संग्रहणीय है।

"रघुबीर निवास",
सीतामऊ (मालवा)
अप्रेल १८, १९७३ई०

—रघुबीरसिंह

— —

प्रस्तावना

जाट न केवल वीर और साहसी हैं, बल्कि औरों की अपेक्षा अधिक ईमानदार व परिश्रमी भी हैं। स्वतन्त्रता, स्वाभिमान और शान्ति के साथ कड़ा परिश्रम इस जाति की मुख्य विशेषताएँ हैं।

१७वीं शताब्दी में आगरा और मथुरा जिलों में जाटों की संख्या सर्वाधिक थी और इनका मुख्य व्यवसाय कृषि था। इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में धर्म-मूलक कट्टर मुस्लिम शासक औरंगजेब ने धार्मिक असहिष्णुता की नीति को अपना कर स्वाभिमानी हिन्दुओं में तीव्र असन्तोष उत्पन्न कर दिया। फलस्वरूप आगरा और मथुरा के जाटों ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। प्रारम्भ में औरंगजेब को इस विद्रोह के दमन में अल्पकालीन अथवा आंशिक सफलता भी मिली, किन्तु अन्ततः यह विद्रोह जाति गौरव की क्रान्ति में परिणित हो गया और तब इसका अन्त बदनसिंह के द्वारा भरतपुर के पृथक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना के साथ ही हुआ। यों विद्रोही गोकला जाट ने राज्य रूपी जिस पौधे का बीजारोपण किया, बदनसिंह ने उस पौधे को अंकुरित किया, सूरजमल ने उस पल्लवित पौधे को भली-भांति सींच कर हरा-भरा बनाया और जवाहरसिंह उसमें फल लाया, किन्तु अल्पकाल में ही इस फलयुक्त पौधे पर ओले गिरने प्रारम्भ हो गये एव भरतपुर राज्य रूपी इस पौधे से कच्चे फल अभी पकने भी नहीं पाये थे कि गिरने प्रारम्भ हो गये तथापि पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य की राजनीति को उपर्युक्त उल्लेखित जाट शासकों ने भी प्रभावित किया। इसी कारण भारतीय इतिहास में जाट जाति का इतिहास बहुत महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

जाट जाति के इतिहास की दिशा में कानूनगो ने सर्व प्रथम "हिस्ट्री ऑफ जाटस" लिख कर इतिहास जगत में जाट जाति की ओर ध्यानाकर्षित किया, किन्तु कानूनगो अपनी पुस्तक मे राजस्थानी और मराठी ऐतिहासिक सूत्रों का प्रयोग नहीं कर पाये। तदनन्तर डा० पाण्डे ने इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न किया और सभी समकालीन सूत्रों को प्रयुक्त कर कानूनगो के प्रयत्न को संवारा तथापि इतिहास जगत को जाटों के इतिहास की विस्तृत जानकारी देने के सम्बन्ध में इसे सन्तोषजनक नहीं

कहा जा सकता। इसी कारण को ध्यान में रखते हुये मैंने अपनी इस पुस्तक में जाट जाति के एक प्रमुख चरित्र के सांगोपांग अध्ययन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर प्रामाणिक इतिहास लिखना, निष्पक्ष दृष्टि से विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों के गुण-दोषों की विवेचना करना, तथा संयत भाषा में उनका ठीक-ठीक महत्त्व आंकना ही इतिहासकार का कर्तव्य है। इस पुस्तक की रचना करते समय इन्हीं आदर्शों का पालन करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है। इस पुस्तक को पूर्णतया प्रामाणिक बनाने के लिये उस काल से सम्बन्धित सभी फारसी, फ्रेंच, मराठी, अंग्रेजी और राजस्थानी ऐतिहासिक ग्रंथों का आलोचनात्मक अध्ययन कर प्राप्त सामग्री का पूरा-पूरा प्रयोग करने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक को प्रस्तुत करने में मुझे उदयपुर विश्वविद्यालय के डा० बि० स्व० माथुर, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग और डा० कृ० स्व० गुप्ता से जो आशीर्वाद, प्रेरणा एवं मार्गदर्शन मिला, उसके लिये मैं इनके प्रति कृतज्ञ हूं। इसके साथ ही मैं अपने निर्देशक डा० लक्ष्मण प्रसाद माथुर के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ, जिनके सहयोग और निर्देशन से ही मैं यह कार्य पूर्ण कर सका हूँ। लेकिन इसका सर्वश्रेय मेरे गुरु महाराज कुमार डा० रघुबीरसिंह को है, जिनकी पूर्ण सहायता एवं प्रे पूर्ण आशीर्वाद से ही यह कार्य सफलतापूर्वक सम्पूर्ण हो सका है। इसके अतिरिक्त भी सरस्वती भवन पुस्तकालय, उदयपुर के उप-पुस्तकालयाध्यक्ष श्री पुरुषोत्तमलाल पालीवाल, व्याख्याता श्री राजेन्द्रसिंह लाखावत, डा० वी० एम० शेख, श्री हेमचन्द्र शर्मा, श्री गिरीशनाथ माथुर, श्री शम्भूसिंह और ओम चौधरी के प्रति भी आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूं, जिनसे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मुझे सदैव सहयोग मिला है। इस पुस्तक के प्रकाशन के सम्बन्ध में प्राचार्य बी० एल० पारख से प्राप्त सहयोग, प्रेरणा और प्रोत्साहन को भी भूलाया नहीं जा सकता।

इस पुस्तक के प्रकाशक हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर का भी अनुग्रहीत हूं, क्योंकि वे इस इस पुस्तक को प्रकाशित कर उसे इतिहास के विद्वानों और इच्छुक पाठकों तक पहुँचाने में क्रियात्मक सहयोग दे रहे हैं।

—मनोहरसिंह राणावत

भोजलाई (उदयपुर)
जुलाई १, १९७३ ई०

संकेत परिचय

एशियाटिक०	एशियाटिक एन्युअल रजिस्टर, १८०० ई० ।
आफाक०	अजाएब-उल्-आफाक
ओझा०	"जोधपुर राज्य का इतिहास," डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा कृत, जिल्द २ ।
औरंग०	"हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब," सर यदुनाथ सरकार कृत, जिल्दें ३-५ ।
इर्विन०	"लेटर मुग़ल्स," इर्विन कृत, जिल्दें १-२ ।
कनिंगम०	"ए हिस्ट्री आफ दी सिख्स," जे० डी० कनिंगम कृत ।
कामवर०	तजकीरात्-उस्-सलातीन-इ-चगताई, मुहम्मद हादी कामवर खां कृत, जिल्द २ ।
कुंज विहारी०	"दी इवोल्युशन ऑफ दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ फॉरमर स्टेट ऑफ भरतपुर," डा० कुंज-विहारीलाल गुप्त कृत ।
केलेण्डर०	केलेण्डर ऑफ पर्शियन कारेस्पाण्डेन्स, जिल्दें १-२ ।
केलकर०	"१८वीं शती के हिन्दी पत्र" डा० काशीनाथ केलकर कृत ।
गण्डा०	"अहमदशाह दुर्रानी," डा० गण्डासिंह कृत ।
ग्राउज़०	"ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर्स ऑफ मथुरा," एफ० एस० ग्राउज कृत ।
गुप्त०	"हिस्ट्री ऑफ दी सिख्स" डा० हरिराम गुप्त कृत ।
चन्द्रचूड़०	"चन्द्रचूड़ दफ्तर," द० वि० आपटे द्वारा सम्पादित, जिल्द १ ।

चहार० ईलियट०	"चहार गुलजार-इ-शुजाई" हरिचरणदास कृत, (ईलियट एण्ड डौसन, जिल्द ८)
जयपुर०	"हिस्ट्री श्राफ जयपुर स्टेट, सर यदुनाथ सरकार कृत। (हस्त लिखित), रघुवीर पुस्तकालय में प्राप्य प्रति।
जाट्स०	"हिस्ट्री श्रॉफ जाट्स," डा० कालिकारंजन कानूनगो कृत।
जोधपुर०	'जोधपुर राज्य की ख्यात," जिल्द ३।
ता० श्रा०	"तारीख-इ-श्रालमगीर सानी" सर यदुनाथ सरकार कृत श्रंग्रेजी श्रनुवाद।
तारीख०	तारीख-इ-हिन्द, रुस्तम श्रली खां कृत।
थर्टी०	"थर्टी डिसायसिव बैटल्ज श्रॉफ जयपुर", राव बहादुर ठाकुर नरेन्द्रसिंह कृत।
दि० क्रा०	"दिल्ली क्रानिकल", सर यदुनाथ सरकार कृत श्रंग्रेजी श्रनुवाद।
नरेन्द्र०	"महाराजा ईश्वरीसिंह का चरित्र," ठाकुर नरेन्द्रसिंह वर्मा कृत।
नूरुदीन० रशीद०	"नजीबुद्दौला," सैदय नूरुद्दीन हुसैन कृत, श्रनुवादक श्रौर सम्पादक, शेख श्रब्दुर्रशीद।
नूरूद्दीन० इस्लामिक०	"लाईफ श्रॉफ नजीबुद्दौला" सैयद नूरूद्दीन हुसैन कृत, सर यदुनाथ सरकार कृत श्रग्रेजी श्रनुवाद, (इस्लामिक कल्चर जिल्द ७)।
पर्शियन०	पर्शियन रिकार्ड्स श्रॉफ मराठा हिस्ट्री-देहली श्रफेयर्स, जिल्द १।
पे० द०	"सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर", राव बहादुर गोविन्द सखाराम, सरदेसाई द्वारा सम्पादित, जिल्दें २१,२७,२९।
पे० द० (नई)०	सिलक्शन्ज फ्राम पेशवा दफ्तर,"(न्यू सिरीज), पी० एम० जोशी द्वारा सम्पादित, जिल्दें १-३।
पूर्व०	"पूर्व-श्राधुनिक राजस्थान" डा० रघुवीरसिंह कृत।
फतूहात०	फतूहात-इ-श्रालमगीरी, ईश्वरदास नागर कृत।

फाल०	"फाल ऑफ दी मुग़ल एम्पायर", सर यदुनाथ सरकार कृत, जिल्दें २-३ ।
बनेड़ा०	"सिलेक्शन्ज फ्राम बनेड़ा आरकाइव्ज", डा० एल० पी० माथुर और डा० के० एस० गुप्ता द्वारा सम्पादित ।
बिहारी० इस्लामिक०	"नजीबुद्दौला रुहेला चीफ", बिहारीलाल मुन्शी कृत, सर यदुनाथ सरकार द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, (इस्लामिक कल्चर, जिल्द १०) ।
बेगम०	"बेगम समरू", ब्रजेन्द्र नाथ बनर्जी कृत ।
मआसीर०	"मआसीर-इ-आलगीरी", यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद ।
मथुरा०	"हिस्ट्री ऑफ दी जयपुर स्टेट", डा० मथुरा-लाल शर्मा कृत ।
मनुची०	"स्टोरिया डी मोगोर", मनुची कृत, इर्विन द्वारा अनुवादित एवं सम्पादित, जिल्दें १-४ ।
यदु०	"यदु वंश," गंगासिंह कृत ।
रघु०	"मालवा इन ट्रान्जिशन", डा० रघुवीरसिंह कृत ।
राजवाड़े०	"मराठाच्या इतिहासाचीं साधनें," वि० का० राजवाड़े द्वारा सम्पादित, भाग १ ।
रेऊ०	"मारवाड का इतिहास", विश्वेश्वरनाथ रेऊ कृत, भाग १ ।
रैने०	"मेमोयर्स ऑफ रैने मादे", सर यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद ।
वंश०	"वंश भास्कर," सूर्यमल मिश्रण कृत, जिल्द ४ ।
वीर०	"वीर विनोद", कविराजा श्यामलदास कृत, जिल्द ३ ।
वैण्डल०	"एन एकाउण्ट आफ दी जाट किंगडम", फादर वैण्डल कृत, सर यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद ।
शाकीर०	तारीख-इ-शाकीर खानी, शाकीर खाँ कृत ।

शुजा०	"शुजाउद्दौला", डा० आशीर्वादीलाल कृत जिल्दें १-२।
सरदेसाई०	"ए न्यू हिस्ट्री ऑफ दी मराठाज्," गोविन्द सखाराम, सरदेसाई कृत, जिल्द २।
सतीश०	"पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स इन दी मुगल कोर्ट" डा० सतीशचन्द्र कृत (१७०७-१७४० ई०)
सलातीन०	अहवाल-इ-सलातीन-इ-मुताखैरीन।
हरसुख० ईलियट०	"मजमूल-अखबार", हरसुखराय कृत, (ईलियट एण्ड डॉसन, जिल्द ८)।
हिंगणे०	"हिंगणे दफ्तर", जी० एस० देसाई द्वारा सम्पादित, जिल्द २।
होलकर०	"होलकर शाहीच्या इतिहासाचीं साधने", वी० वी० ठाकुर द्वारा सम्पादित, जिल्द १।

विषय-सूची

———

चित्र-सूची

———

१ प्रारम्भिक विवेचन

जाट और उनका प्रदेश :

यह जाट जाति देश की निधि है। वह देश का भरण-पोषण भी करती है और रक्षा भी करती रही है। जिस कुशलता से यह खेत में हल चला सकती है, उसी कुशलता से युद्ध-भूमि में यह तलवार चलाना भी जानती है। साहस, वीरता, दृढ़ता और परिश्रम में वह किसी से कम नहीं है।

यद्यपि सी० वी० वैद्य, हरबर्ट रिजले, ई०वी० हैवल और कानूनगो आदि अनेक प्रमुख विद्वान् शारीरिक बनावट, भाषा तथा रीति-रिवाज के आधार पर जाटों को प्राचीन आर्यों का ही वंशज मानते हैं,[1] तथापि जाट शब्द की उत्पत्ति के विषय में अभी तक विद्वान् मतैक्य नहीं हैं। यूरोपीय इतिहासकारों के अनुसार जेटि, जाथ, जूट आदि शब्दों से जाट शब्द की व्युत्पति हुई।[2] अंगद शास्त्री की पुस्तक 'जठरोत्पत्ति' के अनुसार 'जठर' का बिगड़ता हुआ शब्द जाट रह गया। लेकिन् कानूनगो इसे उचित नहीं मानते हैं। जो भी हो यह तो स्पष्ट है कि 'जाट' शब्द ईसा से ६०० वर्ष पूर्व भी संस्कृत पुस्तकों में स्थान पा चुका था।[3]

इस विषय में कोई भी प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है कि भारत में जाटों की विभिन्न शाखाएं अपने वर्तमान निवास स्थानों पर कब और किस प्रकार पहुँची। वर्तमान काल में ये हिमालय की तलहटी से पश्चिम में सिन्ध नदी तक, पूर्व में गंगा नदी से लेकर हैदराबाद तक बसे हुए हैं। हैदराबाद से अजमेर और अजमेर से एक सीधी रेखा भोपाल तक खींची जाय तो उनकी आबादी की दक्षिण तथा

---

१. जाट्स०, पृ० ८–६; यहु०, पृ० ६।

२. यहु०, पृ० ८।

३. जाट्स०, पृ० १६–१७।

पश्चिम की सीमा निर्धारित हो जाती है। ये लोग सिन्धु नदी के उस पार पेशावर, बिलोचिस्तान तथा सुलेमान पर्वतमाला के पश्चिम में भी पाये जाते हैं। गंगा पार पूर्व में भी कहीं-कहीं इनकी आबादी पाई जाती है। सिन्ध, पंजाब, राजस्थान तथा गंगा जमुना के दोआब में अधिकतर यह जाति कृषि-कार्य करती है। विंध्याचल की घाटियों में भी जाट पाये जाते हैं।[1]

चूड़ामन और बदनसिंह के समय जाटों का उत्थान :

१७वीं शताब्दी के मध्य तक जाट जाति पूर्व में आगरा, मथुरा, कोइल (अलीगढ़) तथा पश्चिम में मेवात की पहाड़ियों या आमेर क्षेत्र की सीमाओं तक, उत्तर में दिल्ली से २० मील दूर मेरठ, दक्षिण में चम्बल नदी का किनारा तथा उसके पार गोहद तक फैल गये। इन इलाकों में जाटों की संख्या सबसे अधिक थी।[2]

औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के पूर्व इन इलाकों के जाट शान्ति-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते थे तथा कृषि कार्य में व्यस्त रहते थे। लेकिन् औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति का उसके कुछ अधिकारियों ने खुल कर प्रयोग किया। मथुरा का फौजदार अब्दुन्नबी खां ने बड़े उत्साह के साथ मूर्ति पूजा का अन्त कर देने की अपने सम्राट् की नीति का पालन किया। उसने हिन्दू मन्दिर के भग्नावशेषों पर मथुरा शहर के बीचों-बीच एक जुमा मस्जिद बनवाई। तत्पाश्चात् उसने केशवराम के मन्दिर को, दारा द्वारा उपहार में दिया हुआ नक्काशीदार पत्थर का जंगला सन् १६६६ ई० में वहाँ से हटवा दिया।[3]

उसकी इस नीति ने स्वतंत्र और शांति की भावना से जीने वाले जाटों को विद्रोह पर उतारु कर दिया। जाट किसानों का हृदय मुगलों के विरुद्ध एक बारूद के ढेर के समान हो गया था, जिसमें आग की चिनगारी रखने की देरी ही थी और यह कार्य तिलपट के जमींदार गोकला जाट ने किया। गोकला जाट ने गाँव-गाँव घूम कर मुगलों के विरोध में जाट किसानों का एक संगठन बनाया; और तब १६६६ ई० में तिलपट के जमींदार गोकला जाट के नेतृत्व में जाट किसानों ने मुगलों

---

१. यदु०, पृ० १५–१६।

२. फाल०, २, पृ० ३०६, ३०७।

३. औरंग०, ३, पृ० २६३।

के विरुद्ध मुक्ति-संग्राम छेड़ दिया,[१] जो कोई ५२ वर्ष तक निरंतर चलता रहा। उसे दबाने के लिये मथुरा का फौजदार अब्दुन्नबी खां बसरा गाँव की ओर चला। परन्तु मई १० के लगभग वह इस युद्ध में गोली से मारा गया।[२] गोकला जाट ने सादाबाद का परगना लूट लिया। धीरे-धीरे यह जाट विद्रोह मथुरा के पड़ोसी जिले आगरा में भी फैल गया।[3]

अब्दुन्नबी खां के यों मारे जाने पर जाटों के दमनार्थ औरंगजेब ने सफशिकन खां और उसके बाद सैय्यद हसनअली खां को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया।[४] फिर भी सन् १६६९ ई० के पूरे वर्ष भर मथुरा में अशांति और उपद्रव की धूम मची रही। सफशिकन खां के असफल होने पर सैय्यद हसनअली खां अपने सहयोगी शेख रजीउद्दीन के साथ विशाल शाही सेना के साथ विद्रोही नेता गोकला जाट का दमन करने के प्रयत्न में लगा। जाट नेता गोकला भी अपनी २० हजार किसान सेना के साथ सामना करने के लिये आगे बढ़ा। अतः १६७० ई० की जनवरी के प्रारम्भ में तिलपट से २० मील दूर स्थान पर दोनों सेनाओं के मध्य भयंकर लड़ाई हुई, जिसमें बहुत मार-काट के बाद हसनअली खां ने गोकला को पराजित कर दिया। गोकला भाग कर तिलपट चला गया।[५] तब शाही सेना ने तिलपट को जा घेरा। तीन दिन के घमासान युद्ध के बाद शाही सेना तिलपट पर अधिकार करने में सफल हो गयी।

इस युद्ध में ४ हजार शाही सैनिक और ५ हजार जाट सैनिक मारे गये। जाट नेता गोकला अपने कुटुम्बियों और ७ हजार साथियों सहित कैद कर लिया गया था। बन्दी गोकला जाट को बादशाह के पास भेज दिया गया, जहां उसकी निर्मम हत्या करवा दी गई, ताकि इस क्रूर दण्ड से विद्रोही जाटों में भय व्याप्त हो जाय।[६] उसकी एक लड़की को मुसलमान बना कर शाहकुली कोल के साथ उसका निकाह कर दिया गया और गोकला जाट के लड़के को मुसलमान बना कर उसका

---

१. मअ़्‌लूहात०, प० ५३ ख; औरंग०, ३, पृ० २९३।
२. मआसीर०, पृ० ५८; खाफ़ी़०, २, पृ० १६१, १६२; औरंग०, ३, पृ० २९४।
३. मआसीर०, पृ० ५८; औरंग०, ३, पृ० २९४; स्टर्ड०, पृ० १६१।
४. औरंग०, ३, पृ० २९४।
५. मअ़्‌लूहात०, प० ५३ ख; मआसीर०, पृ० ५८; खाफ़ी़०, २, पृ० १६६।
६. मअ़्‌लूहात०, प० ५३ ख–५३ ब।

नाम फाजिल खां रखा और उसे जवाहर खां को सौंप दिया जिसकी देख रेख में उसका पालन-पोपण हुआ ।[1]

हसनअली खां के इन प्रयत्नों तथा उसकी सफलताओं से मनोवांच्छित परिणाम निकला । पूरे जिले में शांति स्थापित हो गई, परन्तु यह सब कुछ समय के लिये ही रह पाया । इसी समयान्तर में सन् १६८१ ई० से औरंगजेब दक्षिण चला गया और वहीं के युद्धों में उलझ गया, जो उसकी मृत्यु पर्यन्त चलते रहे । अतः नर्मदा से उत्तर के सारे ही पुराने सुसमृद्ध सूबे बहुत ही साधारण योग्यता वाले अमीरों को सौंपे गये और उनके साथ सेना भी बहुत थोड़ी रखी । इसके साथ ही व्यापारियों के माल से लदे हुए साम्राज्य की आमदनी का रुपया, सेना के लिए अत्यावश्यक युद्ध सामग्री और अमीरों के कुटुम्बों तथा माल-असबाब को लेकर सुदूर दक्षिण को जाने वाले लम्बे-लम्बे काफिले, उत्तरी भारत के रास्तों पर से निरन्तर गुजरते रहते थे । दिल्ली से आगरा और धौलपुर तथा आगे मालवा में होकर दक्षिण को जाने वाली शाही सड़क जाटों के प्रदेश में होकर गुजरती थी । इन वीर और सशक्त मेहनती जाटों को लूटमार न करने देने के लिये शक्तिशाली सेना के आक्रमण का डर ही एक मात्र उपाय था ।[2]

औरंगजेब के यों दक्षिण चले जाने से उत्तरी भारत में जाटों को जो मौका मिला, उससे गोकला के खून का बदला लेने के लिये १६८५ ई० में सनसनी के जमींदार भज्जा के पुत्र राजाराम ने जाट संगठन की बागडोर सम्भाली और उसने सोगर के जमींदार रामचेहरा को भी अपना मित्र बना लिया । अब इन दोनों ने मिल कर व्यवस्थित सेना तैयार की । सड़क रास्तों से बहुत दूर जंगलों में उन्होंने कई एक छोटी-छोटी गढ़ियां बना ली थीं, इन गढ़ियों के चारों ओर मिट्टी की मोटी-मोटी दीवारें बना कर उन्होंने उन्हें बहुत सुदृढ़ बना लिया था जिससे इन दीवारों पर गोला-बारी का भी कोई असर नहीं हो पाता था । तब उन्होंने आगरा-दिल्ली, आगरा-ग्वालियर तथा मालवा को जाने वाले शाही मार्गों की ओर कूच किया और तीव्र रूप से लूटमार प्रारम्भ कर दी ।[3] ईश्वरदास के अनुसार "उसकी इस लूटमार

---

१. मआसीर०, पृ० ५८; कामवर०, २, पृ० १६६ ।

२. औरंग०, ३, पृ० २९६; ५, पृ० २३७ ।

३. फतूहात०, प० १६४ ब; औरंग०, ५, पृ० २३९, २४०; जाट्स०, पृ० ४० ।

के कारण आने-जाने के मार्ग इतने बन्द हो गये थे कि पक्षियों को भी अपने पर फड़फड़ाने की जगह नहीं रही।"[१]

आगरा का सूबेदार सफी खां राजाराम जाट के इन उपद्रवों को दबा नहीं सका। इस जिले के कई गाँवों को जाटों ने लूटे। कुछ दिनों बाद राजाराम ने धौलपुर के पास तूर्रानी सेनानायक अगर खां पर आक्रमण कर उसे मार डाला, जो बीजापुर के पास पड़े शाही पड़ाव से चल कर काबुल जा रहा था।[२] राजाराम की इस धृष्टतापूर्ण सफलता से औरंगजेब क्षुब्ध हुआ और दिसम्बर १६८७ ई० में उसने जाटों के विद्रोह के दमन के लिए शाहजादा बेदारबख्त को सेना का प्रधान सेनापति बनाकर भेजा। किन्तु शाहजादा के पहुंचने से पहले ही कई एक घटनाएं घट चुकी थीं। राजाराम ने हैदराबाद के मीर इब्राहिम पर आक्रमण किया जो कि पंजाब की सूबेदारी सम्भालने जा रहा था। तदनन्तर उसने सिकन्दरा में बने हुए अकबर के मकबरे को लूटा और ईश्वरदास के अनुसार "सम्पूर्ण मकबरे को तोड़-फोड़ कर वहां के कालीन, सोने चांदी के बर्तन तथा कंदील आदि सब कुछ उठाकर ले गया।"[३] मनूची भी लिखता है "वहां जड़े हुए बहुमूल्य रत्नों तथा सोने-चांदी के बर्तन लूटे और जो कुछ भी वे उठा कर नहीं ले जा सके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। मकबरे को खोद कर अकबर की हड्डियों को भी बाहर निकाला और क्रुद्ध हो आग में डाल कर उन्हें भी जला दिया।"[४]

जाटों के इन कृत्यों ने शाहजादा को भयभीत कर दिया। अतः मथुरा पहुंचने पर भी उसने जाटों पर कोई आक्रमण नहीं किया और औरंगजेब से और सैनिक सहायता भेजने के लिये आग्रह करता रहा। इसी समय सन् १६८८ ई० में चौहानों और शेखावतों के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया। मेवात का मुगल फौजदार इस युद्ध में शेखावतों की ओर से सम्मिलित हो गया और राजाराम जाट भी चौहानों की सहायतार्थ इस युद्ध में जा पहुँचा। जब दोनों पक्षों में घोर युद्ध चल रहा था, उसी समय विरोधी दल वालों ने राजाराम को जुलाई ४, १६८८ ई० के दिन गोली से मार दिया।[५]

---

१. फतूहात०, पृ० १३१ ब।
२. मआसीर०, पृ० १८६; कामवर०, २, पृ० २३१–२३२।
३. फतूहात० पृ० १३२ ब।
४. मनूची०, २, पृ० ३२०।
५. औरंग०, ५, पृ० २८२; जाट्स० पृ० ४२–४३।

किंतु राजाराम की मृत्यु से भी यह जाट विद्रोह शांत नहीं हुआ, परन्तु कुशल नेतृत्व के अभाव में विद्रोही जाट किसानों को तब कुछ समय के लिये अज्ञातवास अवश्य करना पड़ा। जाटों का पूर्ण दमन करने के लिये आम्बेर के नये कछवाहा राजा बिशनसिंह को औरंगजेब ने मथुरा का फौजदार नियुक्त किया और जाटों का प्रदेश सनसनी भी उसे जागीर में दे दिया।[1] कछवाहा राजा बिशनसिंह विशाल शाही सेना के साथ सनसनी की ओर रवाना हुआ और सनसनी से १० मील दूर उसने शाही सेना का पड़ाव डाला। लेकिन् जाट प्रदेश सनसनी पर अधिकार करना कोई आसान कार्य तो था नहीं। अब जाटों ने मुगल सेना को परास्त करने के लिये नयी युद्ध नीति को अपनाया। उन्होंने अब छापामार युद्ध प्रारम्भ कर दिया और अवसर देख कर वे शाही सेना पर रात्रि में आक्रमण करने लगे।[2]

यही नहीं उनके इस प्रकार के युद्ध से शाही सेना में रसद पहुंचना और तालाब से पानी भर कर ले जाना भी कठिन हो गया। ईश्वरदास के अनुसार "ऐसी परिस्थिति हो गई थी कि व्यक्ति भूख से निढाल हो गये और घास के अभाव में पशु ऐसे अशक्त हो गये थे कि उनके लिये जमीन से उठना भी कठिन हो गया था।[3] तथापि राजा बिशनसिंह सनसनी का घेरा डाले दृढ़ता से डटा रहा। उसके साहस और धैर्य से प्रसन्न हो विजय लक्ष्मी ने भी उसी के गले में वरमाला डाली। सुरंग से दुर्ग की एक ओर की दीवार को उड़ा दिया गया। तब दोनों सेनाओं में तीन घन्टों तक घमासान युद्ध हुआ। विजय की आशा छोड़ कर जाट सेना जंगलों में भाग गयी। इस युद्ध में १५०० जाट सैनिक मारे गये या घायल हुए और २०० शाही सैनिक मारे गये तथा ७०० राजपूत सैनिक मरे या आहत हुए।[4] अगले वर्ष अचानक आक्रमण कर राजा बिशनसिंह ने मई २१, १६९१ ई० के दिन जाटों के दूसरे सुदृढ़ दुर्ग सोगर पर भी अधिकार कर लिया।[5]

इतने पर भी जाट मुक्ति-वाहिनी का पूर्ण दमन कर सकना राजा बिशनसिंह के लिऐ असम्भव हो गया; क्योंकि उधर जाटों के सुयोग्य नेता के रूप में चूड़ामन जाट उभरने लगा था, जिसने कालांतर में जाट शक्ति को चरम सीमा पर पहुंचा दिया।

---

१. फतूहात०, प० १३३ अ; औरंग०, ५, पृ० २४३।
२. फतूहात०, प० १३५ ब।
३. फतूहात०, प० १३६ अ–१३६ ब।
४. फतूहात०, प० १३६ ब–१३७ अ।
५. मआसीर०, पृ० २०५; फतूहात०, प० १३७ अ–१३७ ब।

चूड़ामन ने गांव-गांव घूम कर जाट सेना का संगठन करना प्रारम्भ किया। कुछ ही समय में उसने ५०० घुड़ सवारों और एक हजार पैदलों की सेना एकत्र कर ली। नन्दा जाट भी एक सौ घुड़ सवारों के साथ उससे मिल गया। सौंख व सोगर के जाट भी उसके मित्र बन गये। इस प्रकार उसने अपनी वाकपटुता और व्यक्तित्व के सहारे विद्रोहियों का एक दृढ संगठन बना लिया। तदनन्तर सनसनी के मुगल किलेदार पर आक्रमण किया। मुगल किलेदार युद्ध में मारा गया। यों १७०४ ई० में सनसनी पर चूड़ामन का अधिकार हो गया। अक्तूबर १७०५ ई० में जब सनसनी पर पुनः मुगलों का अधिकार हो गया, तब तो उसने शाही परगनों में लूटमार प्रारम्भ कर दी। दक्षिण में औरंगजेब के पास चूड़ामन के इन उत्पातों के समाचार बराबर पहुंचने लगे, तब उसने इसका दमन करने के लिए सैनिक कार्यवाहियां भी कीं। लेकिन् अपने जीवन काल में वह जाटों का दमन नहीं कर पाया।[1]

१७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु पर उसके पुत्रों आजम और मुअज्जम में जब उत्तराधिकार का संघर्ष प्रारम्भ हो गया, तब चूड़ामन भी इस युद्ध में आजम की सेना में सम्मिलित हो गया और जब आजम की पराजय के लक्षण दिख पड़े तब उसने आजम के डेरे पर धावा बोल दिया और उसका सारा सामान लूट लिया। मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से जब गद्दी पर बैठा तो उसने चूड़ामन की शक्ति को जान कर, उसे १५०० जात और ५०० सवार का मनसब दिया तथा उसे साम्राज्य का एक जागीरदार बना दिया।[2] फरवरी २७, १७१२ ई० को बहादुरशाह की मृत्यु हुई और तब उसका उत्तराधिकारी जहांदरशाह अयोग्य निकला। अतः डा० कानूनगो के अनुसार एक विजेता विद्रोही, जिसने अपने पौरुष तथा भयाक्रान्त बल से साम्राज्य की सीमाओं में शक्ति प्रधान जागीर बनाई थी और अनेकों गांव अपने कब्जे में कर लिये। वह सम्राट जहांदरशाह के सैनिक बलहीन शासनकाल में वह कभी भयभीत नहीं हो सकता था और न सर्वोच्च सत्ता के प्रति अपनी भक्ति ही प्रदर्शित कर सकता था।[3] लाहौर के गृह युद्ध से लौट कर उसने अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ किया और उसने पुनः लूटमार प्रारम्भ कर दी। दिल्ली से जयपुर की सीमा तक और मेवात से चम्बल तक के सभी परगनों में लूटमार मचा दी। इसी समय

फर्रुखसियर जहांदरशाह के विरोध में अपनी सेना के साथ जब पटना से रवाना हुआ, तब भयभीत जहांदर शाह ने चूड़ामन को अपने सहयोग के लिये आमन्त्रित किया था। अतः जनवरी १०, १७१३ ई० के गृह युद्ध में वह सम्मिलित हुआ और जब युद्ध प्रचण्ड रूप में चल रहा था, तब उसने नि.सकोच दोनों पक्षों को लूटा और शाही लूट के माल के साथ वह अपने निवास पर वापस लौटा।[1]

फर्रुखसियर ने गद्दी पर बैठने के बाद जाट शक्ति का दमन करने के लिए मार्च, १७१३ ई० में राजा छबीलाराम को आगरा का सूबेदार बना कर भेजा।[2] जाट शक्ति के दमन में असफल होने पर छबीलाराम के स्थान पर खानेदौरान शमशुद्दौला की नियुक्ति की गई[3] जिसने जाटों के साथ मित्रता बनाये रखना ही उचित समझा और उसी के प्रयत्नों से चूड़ामन ४०० सवारों के साथ अक्टूबर १७१३ ई० में दिल्ली में सम्राट् के समक्ष उपस्थित हुआ। सम्राट् ने जाट सरदार को बहादुर खां की उपाधि से विभूषित किया। इसके साथ ही राव का पद देकर उत्तर में दिल्ली से बाहर बाराहपुला से लेकर दक्षिण में चम्बल तक पूर्व में आगरा से लेकर पश्चिम में आम्बेर राज्य की सीमाओं तक की राहदारी का भार सौंपा। राहदारी का अधिकार देकर बादशाह ने उसकी लूट-पाट को कानूनी समर्थन दे दिया। कानूनगो के शब्दों में इस प्रकार भेड़िये को भेड़ों की रखवाली के लिये नियुक्त किया गया।[4]

कुछ समय बाद चूड़ामन को अखेगढ़ (नदबई), हैलक, नगद (बरोदरमेव), कठूमर, अऊमलाह, अधापुर, वराह, इकरन तथा रूपवास भी जागीर में मिल गये। लेकिन इससे चूड़ामन सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह अन्य मुस्लिम जागीरदारों के आधीन क्षेत्रों में भी हस्तक्षेप करने लगा। व्यापारियों से मनमानी राहदारी वसूल की और मौजाबाद, कामार, सहार आदि परगनों में लूटमार शुरू कर दी।[5] चूड़ामन के इन भयंकर उपद्रवी कार्यों को देखकर सम्राट् फर्रुखसियर ने आम्बेर नरेश सवाई जयसिंह को चूड़ामन के विरुद्ध फौजी अभियान के लिये आदेश दिया लेकिन सम्राट्

---

१. जाट्स० पृ० ४९; सतीश०, पृ० १२३; पाण्डे०, पृ० १५।
२. कामवर०, २, पृ० ३६१।
३. आफाक०, पृ० ५८; जाट्स०, पृ० ५०।
४. जाट्स०, पृ० ५१।
५. सतीश०, पृ० १२३।

फर्रुखसियर और सवाई जयसिंह तब चूड़ामन का दमन नहीं कर पाये। किंतु कुछ समय बाद चूड़ामन और बदनसिंह में मत भेद हो जाने से बदनसिंह आम्बेर नरेश सवाई जयसिंह की शरण में चला गया। तब तो इस गृह कलह से खिन्न होकर चूड़ामन ने आत्म हत्या कर ली।[१] इसके बाद सवाई जयसिंह ने बदनसिंह की सलाह से थून पर आक्रमण किया। मोकमसिंह भाग निकला और सन् १७२१ ई० में थून पर सवाई जयसिंह का अधिकार हो गया। सवाई जयसिंह ने थून गढ़ी को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया।[२]

चूड़ामन में जाटों जैसी दृढ़ता और मराठों जैसी चतुराई व राजनैतिक दूर-दर्शिता कूट-कूट कर भरी हुई थी। कार्यकुशलता तथा अवसरवादिता ही उसके जीवन के प्रमुख अंग थे। वह राजनीति का प्रयोग केवल राजनीति के लिये ही करता था, मानवीय भावनाओं के लिये नहीं। इसी के सहारे उसने औरंगजेब जैसे बादशाह को नाकों चने चबाए थे। वही एक ऐसा व्यक्ति था, जिसने १८वीं शताब्दी में शत्रुओं का मान मर्दन कर, उत्तरी भारत में जाट शक्ति को भारत की प्रमुख शक्तियों मे स्थान दिलाया था। उसी के प्रयत्नों के फलस्वरूप जाट शक्ति का तेजस्वी सितारा उत्तरी भारत के राजनैतिक आकाश में जगमगा उठा था।

मुगल बादशाहों के अनेकानेक प्रयत्न करने पर भी जाटों के सुयोग्य और कूटनीतिज्ञ नेता चूड़ामन का दमन शाही सेना नहीं कर सकी थी। चूड़ामन ने लूट-मार करके ऐसा आतंक फैलाया था कि मुगल फौजदार उसका दमन करने में अपने आपको असमर्थ पाते थे।[३] परन्तु यों चूड़ामन की आत्म हत्या ने मुगलों के वर्षो से

---

१. तारीख० पृ० ४६५; सलातीन०, पृ० ५६; जाट्म०, पृ० ५७–५८।

२ कामवर० पृ० ४१७, ४१८; तारीख०, पृ० ४६५; सतीश०, पृ० १७८; फाल०, २, पृ० ३१२।

३. आपाक० (पृ० ५७) के अनुसार मथुरा के फौजदार राजा छबीलाराम ने बादशाह को एक पत्र लिखा कि—"मैं स्वयं के स्थानान्तर विषयक बादशाह की इच्छा से संतुष्ट हूँ। यदि बादशाह की ऐसी इच्छा है तो यह मेरा सौभाग्य ही है। लेकिन् जो व्यक्ति चूड़ामन जाट की सेना को दबाने का साहस करता है, उसके लिये शाही फरमान जारी कर दिया जाय ताकि वह उसका दमन कर दे। लेकिन् उससे यह अवश्य पूछा जाय कि उसे इस कार्य में कितना समय लगेगा। ऐसी परिस्थिति में डींगे मारने की उसकी बात स्पष्ट हो जायेगी।"

चल रहे प्रयत्न को आसान कर दिया और चूड़ामन की मृत्यु के साथ ही भरतपुर राज्य का संस्थापक बदनसिंह जाट आम्बेर के कछवाहा के आधीन एक जमींदार बन गया।

नवम्बर, १७२१ ई० में बदनसिंह के ही सहयोग से सवाई जयसिंह थून की गढ़ी पर अधिकार कर पाया था। अतः वह उसका रक्षक बन गया। उसके शिष्टाचार में बड़ी नम्रता झलकती थी और उसके व्यवहार से ऐसा लगता था कि वह हमेशा दूसरों की सहायता करने को तत्पर रहेगा। उसकी यह प्रवृत्ति जाटों के साधारण चरित्र से बिल्कुल भिन्न थी। इसीलिए वह जयसिंह का कृपा पात्र बन सका था। जयसिंह ने बदनसिंह को टीका किया और निशान, नक्कारा, पंचरंगा झण्डा और ब्रजराज की पदवी प्रदान की। इससे बदनसिंह को जाटों पर सत्ता प्राप्त हो गई और अन्यत्र उसका अधिक सम्मान होने लगा। परन्तु सामन्त नरेश के ये समस्त प्रतीक प्राप्त कर लेने के बाद भी उसने स्वयं को राजा घोषित नहीं किया। वह अपने जीवन काल में अपने को ठाकुर नाम के से ही सम्बोधित कराता रहा और अपने आप को आम्बेर नरेश का जागीरदार ही घोषित करता रहा।[1]

सवाई जयसिंह की कृपा से बदनसिंह की प्रतिष्ठा अपने पूर्वजों से भी अधिक बढ़ गई थी और इसी प्रतिष्ठा के कारण वह राजसत्ता का उपभोग करने लगा था। सर्व प्रथम तो उसने प्रमुख सम्पन्न जाटों की सम्पत्ति और भूमि पर अधिकार कर लिया व सबको साधारण जाट बना दिया। तब तो बदनसिंह जमींदार से छोटा सा राजा बन गया। उसने अपनी सैनिक शक्ति में भी वृद्धि की। जब सैयद बन्धुओं ने दिल्ली की सत्ता हड़प ली और उसके कारण शासन व्यवस्था में गड़बड़ी उत्पन्न हो गई, तब जाट लोग पहले की अपेक्षा अधिक लूटमार और उत्पात करने लगे। क्योंकि बदनसिंह ने अब सैनिक शक्ति बढ़ा ली थी, जिससे उसकी शक्ति में वृद्धि हो गई। उसकी सेना का एक भाग दिल्ली के शाही मार्ग और आगरा के आस पास के हिस्सों को लूटने में लगा हुआ था और पड़ोस में शेष भरतपुर राज्य को बढ़ाने में व्यस्त हो गया।[2]

इस प्रकार दिल्ली साम्राज्य की आन्तरिक कमजोरी से लाभ उठाकर जाटों ने अपनी किले बन्दी भी शुरू की। उनमें गोले बारूद एकत्र करने लगे, जिससे लम्बे काल तक आत्म रक्षा की जा सके। थून, सनसिनी, सोगर और उनके अन्य पुराने गढ़

---

१. तारीख०, पृ० ४६५; सतीश०, पृ० १७८–१७९; फाल०, २, पृ० ३१३-१४।
२. फाल०, २, पृ० ३१४, इर्विन, २, पृ० १२३।

राजा बदनसिंह
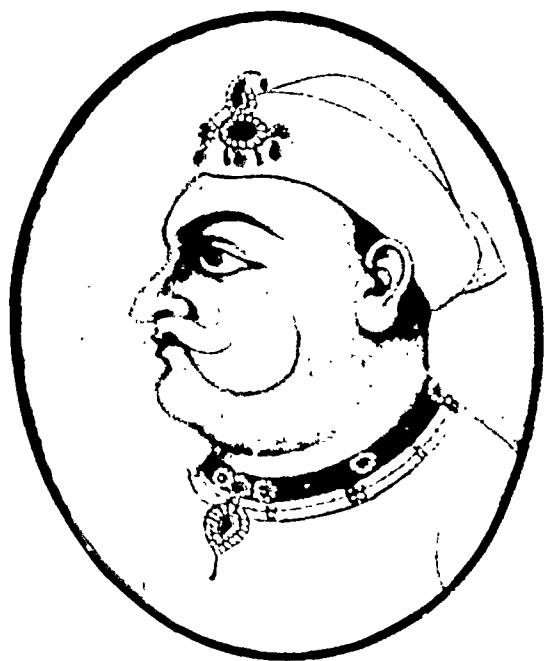
(ब्लाक, श्री पृथ्वीसिंह गहलोत, जोधपुर के सौजन्य से प्राप्त)

जो शाही सेना ने नष्ट कर दिये थे, अब उनके स्थान पर बदनसिंह ने डीग, भरतपुर, कुम्हेर, और वैर के दुर्गों का निर्माण करवाया । इस सैनिक तैयारी की सम्राट् के दरबार में कई बार शिकायतें भी हुईं, लेकिन् बदनसिंह ने कमरुद्दीन को रिश्वत देकर उसे शान्त कर दिया । जब अगस्त १७२२ ई० में सवाई जयसिंह को आगरा की सूबेदारी मिल गई तो जाटों को खूब मनमानी करने का अवसर मिल गया ।[1] सवाई जयसिंह ने आगरा, दिल्ली और आम्बेर के शाही मार्गों की देखभाल का काम और उन पर राहदारी वसूल करने का काम भी बदनसिंह को सौंप दिया । सवाई जयसिंह का नायब और आगरा प्रान्त का वास्तविक सूबेदार बदनसिंह का मित्र था । वह जाटों के साहसी कामों के लिए उपयुक्त पुरुष था । अतः ये लोग प्रान्त में घूमते और लूटमार किया करते थे । बदनसिंह ने गिरते हुए मुगल साम्राज्य की स्थिति का लाभ उठा कर अपने पड़ौसी कई क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया तथा नये दुर्गों का निर्माण करवाया और पर्याप्त युद्ध सामग्री संग्रहीत कर शक्तिशाली बन गया । परन्तु इतनी सम्पत्ति और सैनिक शक्ति अपने पास होते हुए भी जब भी सम्राट् उसे अपने दरबार में बुलाता था तब वह यह कह कर क्षमा मांग लिया करता था कि मैं साधारण किसान हूँ । वह केवल जयपुर नरेश के प्रति अपनी वफादारी प्रकट किया करता था और अपने को उसका ही सामन्त घोषित करता था और प्रतिवर्ष दशहरे के अवसर पर वह उसके दरबार में उपस्थित हुआ करता था ।[2]

(३) सूरजमल का प्रारम्भिक कार्य काल तथा जाट राज्य का विस्तार:

जून ७, १७५६ ई० को डीग में बदनसिंह की मृत्यु हो गई थी । इससे पहिले भी कई वर्ष तक वह निष्क्रिय तथा शान्त ही रहा और अपनी राजधानी में ही रहा करता था, क्योंकि दिन पर दिन उसकी आँखों की ज्योति घटती जा रही थी । अब जाट राज्य की युद्ध नीति और कूटनीति का निर्देशन उसके दत्तक पुत्र सूरजमल के हाथ में आ गया था और वही युद्धों में जाट सेना का संचालन करता था । जाट शासकों तथा सेनानायकों में सूरजमल ही सबसे योग्य राजनीतिज्ञ और योद्धा था ।

इसीलिए बदनसिंह ने सूरजमल को अपना पुत्र और उत्तराधिकारी मान लिया था और जाट जाति के मुखिया ने भी उसको मान्यता दे दी थी ।[1]

सर्व प्रथम, भरतपुर राज्य का विस्तार उत्तर और पश्चिम में हुआ जहाँ पर अराजक डाकुओं और छोटी-छोटी जागीरों का जाल बिछा हुआ था । यह प्रदेश मेवात कहलाता था । सूरजमल की नेतृत्व योग्यता और उसके सैनिकों की युद्ध कुशलता की कीर्ति बहुत जल्दी फैल गई । इसलिये देश के बड़े-बड़े शासक भी आवश्यकता होने पर उससे सैनिक सहायता मांगने लगे । मई १७४५ ई० में जब सम्राट् मुहम्मदशाह ने रूहेला अली मुहम्मद पर आक्रमण किया तब उस युद्ध में सम्राट की ओर से जाट बड़ी वीरता से लड़े थे । माह नवम्बर १७४५ ई० में अलीगढ़ के फौजदार साबित खां के पुत्र फतह-अली खां ने रुपया देकर सूरजमल से सैनिक सहायता मांगी । फतहअली खां सूरजमल की सहायता से ही असद खां खानजादा को पराजित कर सका था । १७४८ ई० में बगरु के युद्ध में जयपुर नरेश ईश्वरीसिंह ने सूरजमल की सहायता प्राप्त करके ही मराठों को परास्त किया था । यह दूसरी बात है कि अन्त में लड़ाई का रुख ईश्वरी-सिंह के प्रतिकूल हो गया । जनवरी १, १७५० ई० में उसने शाही प्रधान सेनापति सलाबत खां को बुरी तरह परास्त किया ।[2]

तब तो सूरजमल की प्रतिष्ठा दिन पर दिन बढ़ने लगी । शाही वजीर सफदरजंग ने उसे अपने पक्ष में कर लिया । सूरजमल ने प्रत्येक युद्ध में उसकी सहायता की और अपनी वीरता का परिचय दिया । इसी कारण वजीर ने २० अक्टूबर, १७५२ ई० में बादशाह से बदनसिंह को 'राजा' बनवाया और 'महेन्द्र' की उपाधि दिलाई तथा सूरजमल को 'राजेन्द्र' की पदवी देकर 'कुँवर बहादुर' घोषित करवाया और कुछ दिन पश्चात् सूरजमल को मथुरा का फौजदार नियुक्त करवाया ।[3] इससे आगरा प्रान्त में जमुना के दोनों किनारों पर और आगरा के आस पास के क्षेत्रों में उसका शासन जम गया और वहाँ से वह वार्षिक कर लेने लगा । जाटों के अभ्युदय की यह पहली सीढ़ी थी । यद्यपि इससे पहले भी उन्होंने बहुत सम्पत्ति और धन एकत्र कर लिया था परन्तु हिन्दुस्तान के शासकों में तब तक उनको कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ था, और न उनकी सत्ता को कोई वैधानिक मान्यता मिली थी । परन्तु अब उनके

---

१. फाल०, २, पृ० ३१७ ।

२. फाल०, २, पृ० ३१८ ।

३. ता० आ०, प० ४३ ब–४५ अ ।
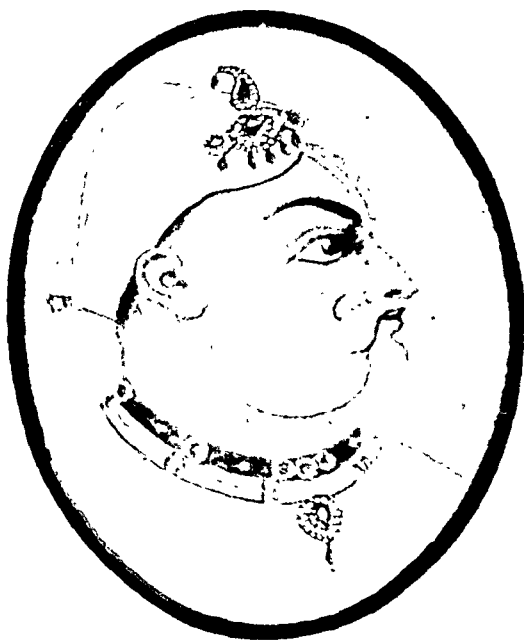
महाराजा सूरजमल

मुखिया को मुगल सम्राट् ने जयपुर के शासक की ही भांति उसे भी एक राजा बना दिया था । सफदरजंग ने अब सूरजमल के नाम वे तमाम जागीरें करवा दीं जो पहले उसको मिली थीं ।[1]

१७५३ ई० में वजीर की सहायता से सूरजमल ने चकला कोईल (अलीगढ़) के फौजदार बहादुरसिंह बड़गुजर को निकाल दिया और उसके पैतृक दुर्ग घसीरा पर भी आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया । किंतु कुछ समय बाद बहादुरसिंह के पुत्र ने इस पर पुनः अधिकार कर लिया था । आगे चल कर जब मराठों ने सूरजमल पर आक्रमण किया तब इमाद-उल-मुल्क ने भी मराठों का साथ दिया था । किंतु चार महीने के घेरे के बाद भी कुम्हेर का दुर्ग उनके हाथ में न आ सका । इससे सूरजमल की ख्याति और बढ़ गई । १७५४ ई० के उत्तरार्द्ध में रघुनाथराव के नेतृत्व में मराठों की सेना ने दिल्ली के चारों ओर के प्रदेश और उसके उत्तर में अपना अधिकार जमा लिया । लेकिन् उत्तर भारत में सफलता प्राप्त करने के लिये उसने सूरजमल से समझौता करना ही उचित समझा । उसी समझौते के आधार पर आगरा प्रदेश में बहुत सा क्षेत्र जो तब मराठों के पास था, उसे सूरजमल के आधिपत्य में मान लिया गया ।[2]

तदनन्तर सूरजमल ने पलवल तथा सितम्बर २७, १७५४ ई० में, बल्लभगढ़ पर भी अधिकार कर लिया । नवम्बर १७५५ ई० में घसीरा की पुर्नविजय तथा मार्च १७५६ ई० को अलवर दुर्ग पर अधिकार कर लिया । जून १७५५ ई० में इमाद के आदेश से नजीबुद्दौला ने उन प्रदेशों की पुनः प्राप्ति के लिये चढ़ाई की जो गंगा-जमुना के दोआब में स्थित थे और उनको सूरजमल ने छीन लिया था । परन्तु नागरमल की अध्यक्षता से दोनों में समझौता हो गया । इस प्रकार सूरजमल ने अपने पिता के जीवनकाल में ही अपने राज्य का विस्तार किया और एक गणमान्य व्यक्ति के रूप में ख्याति भी प्राप्त कर ली ।[3] लेकिन् १७५७ ई० से १७६० ई० तक का समय सूरजमल के लिए विकट समय था । अहमदशाह का चौथा आक्रमण १७५७ ई० में हुआ और पांचवा १७६१ ई० में । वह समय उसके लिये बड़ी विकट स्थिति का रहा था, क्योंकि देश खतरे की रेखा के समीप था । १७५७ ई० के आक्रमण के समय भी अहमदशाह ने जाट प्रदेश को भी लूटा लेकिन् सौभाग्य से जाट

---

१. फाल०, २, पृ० ३१८-३१६ ।
२. इर्विन०, पृ० ७१ ।
३. फाल० २, पृ० ३२१ ।

राजा तब भी पूर्णतया सुरक्षित रहा। फिर भी जाट राजा को बार-बार यह धमकी दी जाती थी कि यदि वह बहुत बड़ी धन राशि नहीं देगा तो अब्दाली आक्रमण करेगा। जनवरी १७६१ ई० में अब्दाली ने पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों को पूर्णतया पराजित किया। उसी समय भी सूरजमल ने बुद्धिमता से केवल कुछ हजार सैनिक ही मराठों की सहायता के लिये भेजे थे। मार्च १७६१ ई० में अहमदशाह भारत से वापस लौट गया। तब तो जाट राजा ही उत्तरी भारतवर्ष में सबसे अधिक शक्तिशाली शासक बन गया।[1]

अब उसने अपने राज्य का पुनः विस्तार करना प्रारम्भ किया। जून १७६१ ई० में धन सम्पन्न आगरा को अपने आक्रमण का लक्ष्य बनाया और किलेदार को रिश्वत देकर आगरा के सुदृढ़ किले पर अधिकार कर लिया। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस लूट में सूरजमल को ५० लाख की [illegible] मिली। तदनन्तर उसने मेवात और रेवाड़ी के बिलोचियों की जागीरों पर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। छोटे-छोटे जागीरदार तो उसके आगे नहीं टिक सके, किन्तु फर्रुखनगर ने दिसम्बर १७६३ ई० तक भी आत्म-समर्पण नहीं किया।[2]

फर्रुखनगर पर आक्रमण को लेकर ही नजीब और सूरजमल में अनबन हो गई, क्योंकि नजीब बिलोचियों का आश्रयदाता था। फर्रुखनगर पर अधिकार करने के पश्चात् सूरजमल ने नजीबुद्दौला पर आक्रमण कर दिया और इसी युद्ध में दिसम्बर २५, १७६३ ई० को सूरजमल ने वीरगति प्राप्त की।[3] इस प्रकार अपने शासन काल में सूरजमल ने पूर्व से पश्चिम में इस राज्य का विस्तार दो सौ मील तथा उत्तर से दक्षिण तक एक सौ चालीस मील तक फैलाया।[4]

---

१. फाल०, २, पृ० ३२३–२४।
२. फाल०, २, पृ० ३२४–४२५।
३. फाल०, २, पृ० ३२७–३३१।
४. यदु०, पृ० २५१।
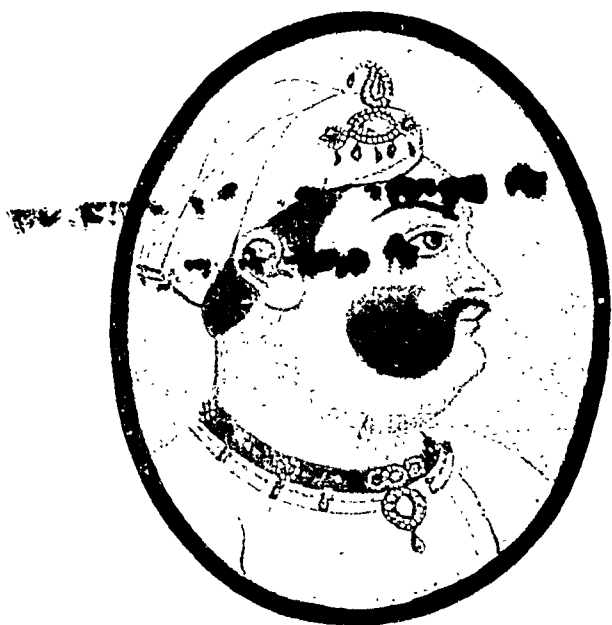
महाराजा जवाहरसिंह

(ब्लाक, श्री सुखवीरसिंह गहलोत, जोधपुर के सौजन्य से प्राप्त)

२ जवाहरसिंह का प्रारम्भिक जीवन और सूरजमल के शासन काल में उसका उत्थान

(१) जवाहरसिंह का प्रारम्भिक जीवन और कार्य :

प्रतिभाशाली भरतपुर नरेश सूरजमल जाट के चार रानियां थीं, जिन्होंने पांच पुत्रों को जन्म दिया जो क्रमश: जवाहरसिंह, रतनसिंह, नवलसिंह, रणजीतसिंह और नाहरसिंह थे।[1] प्रथम दो जवाहरसिंह और रतनसिंह की माता राजपूत थी।[2] तृतीय नवलसिंह की मां माली जाति की थी और अन्तिम दो रणजीतसिंह एवं नाहरसिंह की मां जाट जाति की थी।[3] प्रमुख रानी किशोरी (हंसिया) जिसे सूरजमल सबसे अधिक प्यार करता था, नि:सन्तान थी। सौभाग्यवश उसने जवाहरसिंह को गोद ले लिया।[4] रानी किशोरी के ही प्यार और प्रभाव के कारण विद्रोह प्रिय जवाहर अपने पिता की क्रोधाग्नि से रक्षा पाता रहा। वह (जवाहर) और उसका छोटा भाई रतनसिंह दोनों मुगल दरबार में उच्च मनसब प्राप्त कर सके, क्योंकि रानी किशोरी का शाही अमीरों पर भी बहुत प्रभाव था।[5] रतनसिंह अपने भाई जवाहर के समान योग्य नहीं था। उसे युद्ध, ख्याति और उच्च पद की कोई

---

१. इंण्ड्ल०, पृ० ६० में केवल चार पुत्र जवाहरसिंह, रतनसिंह, नवलसिंह और नाहरसिंह लिखे हैं, लेकिन् कानूनगो पांच पुत्र मानते हैं। (जाट्स पृ० १५६)।

२. इंण्ड्ल ने इसे गोरे जाति का लिखा है तथा इमाद-उस-सादत ने जवाहर की माता को राजपूत जाति की बताया है। अत: सम्भव है गोरे जाति राजपूत जाति को कहा जाता हो। टाड ने इसे कूरमी जाति का बताया है। (जाट्स पृ० १५६-१६०; टाड०, राजस्थान०, प्रास्तकई, ३ पृ० १३५६)।

३. जाट्स० १५६।

४. इंण्ड्ल पृ० ६०; जाट्स० पृ० १६०; पे० द०, २६, प० सं० ५८, ८५।

५. जाट्स०, पृ० १६०।

अभिलाषा नहीं थी। नवलसिंह और रणजीतसिंह साधारण योग्यता रखते थे। नाहरसिंह सूरजमल का सबसे छोटा व प्रिय पुत्र था, वह अधिकतर कुम्हेर रहता था तथा शासन सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त किया करता था। वह पिता का आज्ञाकारी, नम्र और सादे स्वभाव का था, किन्तु निर्भीकता, वीरता, युद्ध-कौशल आदि गुणों का उसमें अभाव था। इसके विपरीत जवाहर में ये सब गुण पूरी तरह विद्यमान थे।[1]

जवाहरसिंह का जन्म कहां और कब हुआ था इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता है। उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा प्रारम्भिक जीवन के बारे में भी कहीं कोई जानकारी प्राप्य नहीं है। यों सन् १७५२ ई० के अन्त तक के उसके जीवन काल पर कोई प्रकाश डाल सकना सम्भव नहीं है। यह बात अवश्य निश्चित रूपेण कही जा सकती है कि तब तक वह यौवनावस्था प्राप्त कर चुका था।

उसने अनेक युद्धों में अपने पिता सूरजमल की सहायता की थी। जनवरी, १७५३ ई० में सूरजमल ने घसीरा के राव पर आक्रमण किया। जवाहरसिंह भी सेना के साथ अपने पिता की सहायता के लिये पहुंचा। उसने युद्ध में वीरता का परिचय दिया। पठानों का दमन करने के लिये जब सूरजमल ने बादशाह की सहायता की तो जवाहर भी उसके साथ था। वजीर सफदरजंग ने सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था, उस समय सूरजमल अपने पुत्र जवाहर के साथ वजीर की सहायता पर पहुंचा। युद्ध में जवाहर ने सम्राट् की सेना पर वायु वेग के समान आक्रमण किया। सितम्बर २७, १७५४ ई० में अपने पिता के आदेश से जवाहर ने पलवल पर अधिकार कर लिया। उसने मेवातियों का भी दमन किया। मराठों के साथ युद्ध में भी वह अपने पिता के साथ था तथा उसने मराठो का डट कर मुकाबला किया।[2]

इसके कुछ ही वर्ष बाद जवाहरसिंह ने माधोसिंह के अधिकार से अलवर के किले को जीत लेने के अभियान में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। यह किला सन् १७५५ ई० के लगभग भी शाही अधिकार में था और तब अनिरुद्धसिंह यहां का किलेदार था। पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य की निर्बलता और दिल्ली शासन की अस्तव्यस्तता से लाभ उठा कर जयपुर का शासक माधोसिंह इस किले को अपने अधीन करने को बहुत ही समुत्सुक था। अतः माधोसिंह ने उसके किलेदार को ५० हजार रुपये देकर, किले में पांच सौ व्यक्ति भेजे और उस पर अधिकार कर लिया। सूरजमल को जब यह समाचार मिला तब उसने रूपराम कोठारी के नेतृत्व में

---

१. जाट्स०, पृ० १६०–१६१।
२. यदु०, पृ० १३९–१४०, १४४–१५०, १६२, १६४।

५ हजार सेना अलवर भेजी। रूपराम ने अलवर के किले को जा घेरा। बाद में अपने पिता सूरजमल के आदेशानुसार जवाहरसिंह भी वहां जा पहुंचा और फरवरी १७५६ ई० में अलवर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। तब माधोसिंह के सैनिकों को किला छोड़ कर निकल जाना पड़ा। यों उसके पास से जवाहरसिंह का यह किला छीन लेना माधोसिह को जीवन भर खटकता रहा और आगे भी फिर कभी इस किले पर जयपुर राज्य का अधिकार नहीं हो पाया।[1]

(२) सूरजमल के साथ उसके सम्बन्ध :

सूरजमल और जवाहरसिंह के आपसी सम्बन्ध किसी समय में भी सन्तोष-जनक नहीं रहे। प्रथम तो, सूरजमल जितना मितव्ययी था उसका नवयुवा पुत्र जवाहरसिंह उतना ही अपव्ययी था। सूरजमल शक्ति और सम्पत्ति से सम्पन्न होकर भी सादा जीवन व्यतीत करता था और अपने परम्परागत साधारण रहन-सहन तथा पहनाव को उसने नहीं छोड़ा था। लेकिन जवाहर का चरित्र अपने पिता से विपरीत था। यद्यपि वह बड़ा दिलेर व युद्ध प्रिय था और उसमें नेतृत्व करने की भी शक्ति थी, परन्तु साथ ही साथ वह बड़ा विलासी एवं अत्यधिक खर्चीला था। शाही दरबार और शाहजादों के रहन-सहन का उस पर गहरा प्रभाव था। वह शान-शौकत, रंगरेलियां मनाने में मुगल सामन्तों का अनुसरण करता था।[2] सूरजमल ने अपने माप-दण्ड के अनुसार उसके लिये समुचित निधि नियत कर दी थी, जिससे कि वह आराम और शान के साथ अपना निर्वाह कर सके। किन्तु अल्हड़ और निर्भीक जवाहरसिंह, रुपये का उचित मूल्य नहीं समझता था। जितना धन उसे खर्चे के लिये मिलता था, वह समय से पूर्व ही खर्च कर देता था और तदनन्तर अधिक धन की मांग पर पिता पुत्र में मनमुटाव होना स्वाभाविक था।[3] द्वितीय, इस समय कुछ व्यक्तियों को विशेष सम्मान देकर जवाहरसिंह ने अपने दरबारी सरदार घोषित कर दिया। अतः भरतपुर की शक्ति दो दलों में विभक्त हो गई। एक बलराम, मोहन-राम तथा अन्य प्रभावशाली सरदारों का दल था जो सूरजमल के दरबारी थे। दूसरा जवाहरसिंह के दरबारी सरदारों का था जो बलराम और मोहनराम के कट्टर विरोधी थे।[4] इन स्वार्थी चाटुकारी सरदारों ने जवाहरसिंह को अपने कठोर एवं

कंजूस पिता के विरुद्ध उकसाया और कहा कि सूरजमल उसके एशो-आराम और स्वातंत्र्य में बाधक है। ये उससे उसकी आय से अधिक खर्च करवाने लगे। सूरजमल ने इसका विरोध किया और जवाहरसिंह को आदेश दिया कि गलत सलाह देने वाले सरदारों को वह अपने यहां से निकाल दें। इस पर जवाहर को यह निश्चय हो गया कि उसके विराधी वृद्ध सलाहकार उसके पिता के विचारों को दूषित करते हैं,[1] जिनके कारण जो सूरजमल की आज्ञा से जवाहरसिंह को व्यय के लिये आवश्यक धन नहीं मिलता है। जवाहरसिंह और उसके साथियों को कई अवसरों पर नीचा देखना पड़ता था।[2] अतः वह उनसे अधिक घृणा करने लगा और अपने पिता के आदेश पर ध्यान नहीं दिया और उसकी अपनी गतिविधियां पूर्ववत् हो चलती रहीं।[3]

नवयुवक जवाहरसिंह महत्त्वाकांक्षी एवं युद्ध प्रिय था। उसने कई युद्धों में वीरता का परिचय देकर वीरता के लिये प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। यही नहीं, अपने दादा (बदनसिंह) के जीवन काल में अपने पिता का साथ देकर भरतपुर राज्य के विस्तार में भी उसने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। सूरजमल इस बात से भलीभाँति अवगत था। उसकी महत्वाकांक्षाओं को दृष्टिगत रखते हुए, सूरजमल ने जवाहरसिंह को डीग का शासक और किलेदार बना दिया। साथ ही उसको दी जाने वाली मासिक रकम को भी बढ़ा दिया था।[4] किन्तु इससे भी जवाहरसिंह की महत्त्वाकांक्षा शान्त नहीं हुई। जब सूरजमल ने देखा कि वह सही मार्ग पर नहीं चल रहा है और न अपने चाटुकारी सरदारों को ही उसने निकाला है, तब उसने स्वयं जवाहरसिंह के उन सरदारों को हटाना चाहा। इस पर जवाहरसिंह और भी बिगड़ा और पिता के पास एक अनुरोधात्मक पत्र भेजा।[5] जब पत्रोत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो वह अविलम्ब प्रत्यक्ष रूप से विद्रोह करने पर उतारू हो गया। तब सूरजमल दिल्ली से ५० मील दूर स्थित मेरठ में था। उसके पास चार–पांच हजार सेना थी। जवाहर ने तब स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। नवयुवक सरदारों की सहायता से डीग के शहर पर भी अधिकार करके लड़ाई के लिये उतारू

---

१. फाल०, २, पृ० ३२२; जाट्स०, पृ० १६३।
२. वैण्डल०, पृ० ७३।
३. यदु०, पृ० १६५।
४. जाट्स०, पृ० १६२।
५. फाल०, २, पृ० ३२२; यदु०, पृ० १६५।

हो गया। सूरजमल ने अपने योग्य व्यक्तियों को जवाहर को समझाने के लिये भेजा। परन्तु दुराग्रही जवाहर में आत्मसंयम तथा दूरदर्शिता का सर्वथा अभाव था एवं उसे समझाने के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। तब सूरजमल स्वयं सेना लेकर मेरठ से डीग की ओर बढ़ा।[1] जवाहर ने भी सूरजमल की सेना पर आक्रमण कर दिया।[2] भयानक लड़ाई छिड़ गई। जवाहर के कुछ सरदार रण में खेत रहे, लेकिन उसके अधिकांश साथी थोड़े ही समय में मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए। किन्तु वीर और बहादुर नेता जवाहर बाकी बचे सैनिकों को लेकर वहीं डट गया और युद्ध करता रहा।[3] जिस स्थान पर घमासान लड़ाई हो रही थी, वहाँ वह निर्भीक जा घुसा और अनेक विरोधी सैनिकों को मार कर स्वयं घायल हो रण भूमि में गिर पड़ा।[4] जिससे सूरजमल को बड़ा दुःख हुआ। वह किसी भी मूल्य पर अपने युद्धानुभवी पुत्र को नहीं खोना चाहता था। बलराम व मोहनराम के अनेक सैनिक जवाहर को घेर कर उसे मार डालने को कटिबद्ध थे। अतः सूरजमल स्वयं शीघ्रातिशीघ्र वहाँ जा पहुँचा और उसने जवाहरसिंह के प्राणों की रक्षा की।[5] गोली, तलवार और भाला के कई घाव जवाहर को लगे थे। अतः उसे वहां से उठा कर डीग के किले में भेज कर उसका इलाज करवाया। जवाहरसिंह की जान तो बच गई, किन्तु उसके शरीर पर तीन घाव आये थे, जिसके कारण उसकी दाहिनी भुजा कमजोर हो गई और एक पैर लगड़ा हो गया।[6] जवाहर की वीरता और रण कौशलता से प्रभावित होकर सूरजमल उसके प्रति अधिक उदार हो गया। इसी समय अब्दाली के भारत पर आक्रमण होने की सम्भावना के समाचार भी फैलने लगे थे। सूरजमल अपने

निर्भीक और साहसी पुत्र से विलग नहीं रह सकता था, जिसने कि पूर्व समय में भी उसे कई युद्धों में सहायता दी थी तथा कुशल नेतृत्त्व का परिचय दिया था। इस प्रकार तब नवम्बर, १७५६ ई० में यह गृह युद्ध समाप्त किया गया और अगले माह अब्दाली स्वयं दिल्ली के साम्राज्य पर टूट पड़ा।[1]

(३) दुर्रानी के साथ संघर्ष :

नादिरशाह की मृत्यु के बाद उसके सेनापति अहमद खां दुर्रानी ने स्वयं को अहमदशाह अब्दाली के नाम से काबुल का शासक घोषित किया था। उसने १७४७ ई० में पेशावर पर अधिकार कर अक्टूबर १७५६ ई० में पंजाब पर अधिकार किया। तत्पश्चात् उसने दिल्ली को अपना लक्ष्य बनाया।[2]

नवम्बर १७५६ ई० में ये समाचार दिल्ली पहुँचे कि दुर्रानी, वजीर इमाद-उल मुल्क को सजा देने के लिये दिल्ली जाने वाला है।[3] शाही वजीर ने अब्दाली के विरुद्ध नजीबुद्दौला से सहायता चाही, किन्तु जब उसकी ओर से सहायता का आश्वासन न मिला, तब उसने नागरमल के द्वारा सूरजमल से संधि करना चाहा, क्योंकि सूरजमल के पास विशाल सेना थी और वह भी अब्दाली को भारत से बाहर रखना चाहता था। नागरमल के निमन्त्रण पर सूरजमल दिल्ली के दक्षिण में तिलपत आया और उसने वहां नागरमल एव नजीबुद्दौला से समझौता वार्ता की।[4] सूरजमल का विचार था कि वजीर स्वयं युद्ध का सचालन करे और रूहेलों, जाटों, जोधपुर, जयपुर आदि के राजपूत राजाओं की सहायता से सर्वप्रथम मराठों को दक्षिण में नर्मदा के पार धकेल कर आन्तरिक सुरक्षा का यथोचित प्रबन्ध करके,

---

१. फाल०, २, पृ० ३२२–३२३।

२. ता० आ०, प० ८० अ; फाल०, २, पृ० ४५।

३. पाण्डे० (पृ० ६१) का यह कथन कि सन् १७५६ में अब्दाली के आक्रमण का प्रमुख उद्देश्य मराठों को उत्तर भारत से बाहर निकालना था। मान्य नहीं किया जा सकता है क्योंकि अपने इस आक्रमण में सर्वत्र उसने केवल लूट-मार की और बलपूर्वक द्रव्य वसूल किया। तब लौटते समय जो अपार द्रव्य वह ले गया उसका सविस्तार विवरण मराठी पत्रों में मिलता है, उससे इस मान्यता की पूर्ण पुष्टि होती है। (पे०द०, २, प०सं० ७१) अतः उसका एक मात्र उद्देश्य भारतीय धन हरण करना था।

४. ता०आ०, प० ८१ ब; फाल०, २, पृ० ६०; जाट्स०, पृ० ६७–६८; गण्डा०, पृ० १७०।

संयुक्त सेना के साथ अफगान आक्रमणकारियों को बाहर निकालने के लिए पंजाब पर आक्रमण करे जैसा कि वजीर कमरुद्दीन के समय १७४८ ई० में किया गया था। सूरजमल अपनी सुरक्षा के लिए उत्तरी भारत की शक्तियों के साथ मिल कर एक संगठन बनाना चाहता था। लेकिन नीति भेद के कारण ये प्रयत्न विफल हो गये। इमाद-उल-मुल्क अपने एकमात्र सहयोगी मराठों के विरुद्ध कदम उठाने के लिए सहमत नहीं हुआ। मराठों के विरुद्ध कदम उठाने की इमाद की अनिच्छा और नजीबुद्दौला की अरुचि से अवगत हो, वजीर को उसके भाग्य के भरोसे छोड़ कर सूरजमल नवम्बर महीने के तीसरे सप्ताह में निराशावस्था में अपने राज्य मे लौट आया।[१]

साम्राज्य की रक्षा के सम्बन्ध में वजीर कोई निर्णय नहीं ले सका। अब्दाली अटक से दिल्ली तक कूच करता हुआ निर्विरोध आ गया।[२] आक्रान्ता से भयभीत हो दिल्ली के अधिकांश छोटे-बड़े व्यक्ति अपने परिवार सहित सूरजमल के प्रदेश मे जा पहुंचे। जहां सूरजमल ने सब को शरण दी।[३] साम्राज्य का इतना अधःपतन हो चुका था कि किसी ने भी अब्दाली के विरुद्ध म्यान से तलवार निकालने का साहस नहीं किया। अब्दाली का सर्वप्रथम विरोध अन्ताजी माणकेश्वर ने किया, जिसे वजीर ने कुछ मराठी सेना के साथ अपनी सहायतार्थ आमन्त्रित कर अब्दाली के आक्रमण से भयभीत हो दिल्ली से भागने वाले व्यक्तियों को रोकने के लिए नियुक्त किया था।[४]

जनवरी १६, १७५७ ई० मे सर्व प्रथम अन्ताजी माणकेश्वर काश्मीरी दरवाजे से उत्तर की ओर १२ मील आगे बढ़ा और उसने दुर्रानी को बढ़ने से रोकने का प्रयत्न किया। अफगान वजीर जहान खां की सेना से उसकी मुठभेड़ हुई, परन्तु किसी सैनिक सहायता के अभाव मे उसे चार मील पीछे धकेल दिया गया। उसके पीछे हटने पर रुहेलों ने उस पर अचानक आक्रमण किया।[५] अन्ताजी के पास न तोपें थी और न सामान था, फिर भी वह जनवरी २१, को सरदार खां को हराने में सफल रहा, जिसे अब्दाली ने चार हजार सवार दे कर फर्रुखाबाद का घेरा डालने के लिए भेजा था।

तीन घण्टे के इस युद्ध में सरवर खां पराजित हुआ।[1] परन्तु अन्त में २० हजार सेना के साथ जहान खां ने फरवरी १, को अन्ताजी माणकेश्वर पर आक्रमण किया। वह तीन हजार मराठी सेना के साथ प्राणों को बाजी लगा कर चार घन्टे तक घोर युद्ध करने पर भी जब विजय की कोई आशा न देख पड़ी, तब अन्ताजी भाग कर बड़ी कठिनाई से मथुरा की तरफ सूरजमल के प्रदेश में चला गया। इस युद्ध में अन्ताजी के एक हजार सैनिक मारे गये जिसमें दो सौ उच्च कोटि के सैनिक थे।[2]

विजयी दुर्रानी सेना ने फरीदाबाद को लूट कर आग लगा दी। दूसरे दिन फरवरी २, को दिल्ली वापस लौट आयी। उसके साथ ६ सौ व्यक्तियों के कटे सिर थे, जो मराठों और जाटों के बताये जाते थे। शाह ने उनको आठ रुपया प्रति सिर पुरस्कार दिया। इस हार के साथ ही मराठों के प्रतिरोध का अन्त हुआ और जब तक अब्दाली भारत में रहा, मराठों ने उसके विरुद्ध कभी तलवार नहीं उठाई।[3] किन्तु अब जाटों का प्रतिरोध प्रारम्भ हुआ।

मराठे परास्त हो चुके थे तथापि दुर्रानी का प्रतिरोधी जाट नरेश सूरजमल अभी मथुरा में अविजित ही था। अन्ताजी माणकेश्वर की पराजय के पश्चात् दिल्ली में अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था ठीक कर तथा आलमगीर द्वितीय को पुनः गद्दी पर बैठा कर अब्दाली तब जाट राजा का कोष प्राप्त करने के लिए फरवरी २२, १७५७ ई० को दक्षिण की ओर बढ़ा।[4]

अब्दाली के दिल्ली आगमन पर सूरजमल ने दूत भेज कर अधीनता स्वीकार की थी। नजीबुद्दौला, इन्तिजाम तथा नागरमल इत्यादि के साथ उसने भी प्रार्थना पत्र पर हस्ताक्षर किये थे, जिसके अनुसार अहमदशाह से निवेदन किया गया था कि इमाद को बन्दी बना कर, कन्धार भेज दिया जावे ताकि वह वापस भारत न आ सके और न वह अब्दाली का विरोध करने को मराठों की सहायता प्राप्त कर सके। तदर्थ उन्होंने उसे ५० लाख रुपये भेंट करने का प्रस्ताव किया। फरवरी ४, को पराजित अन्ताजी माणकेश्वर ने मथुरा पहुंच सूरजमल से भेंट की और अब्दाली के

---

१. फाल०, २, पृ० ८०; गण्डा०, पृ० १७१।
२. फाल०, २, पृ० ८१।
३. पे० द०, २१, प० सं० ९९, १०५; फाल० २, पृ० ८१–८२; गण्डा०, पृ० १७१।
४. फाल०, २, पृ० ८२; जाद्स०, पृ० ९८; गण्डा० पृ० १७२।

विरुद्ध उसकी सहायता चाही, परन्तु सूरजमल उसके लिए तैयार नहीं हुआ,[१] क्योंकि सूरजमल मराठों पर पूर्णरूप से विश्वास नहीं करता था। जयपुर और जोधपुर के राजाओं ने अब्दाली को मराठों के विरुद्ध आमन्त्रित किया था। इसलिए वे अब्दाली के विरुद्ध नहीं लड़ सकते थे। अकेला सूरजमल का अब्दाली की विशाल सेना का सामना करना विनाश को आमन्त्रित करना था। फिर भी उसने अन्ताजी को अपनी चातुर्यपूर्ण नीति से उत्तर दिया कि यदि मराठों की सेना उत्तर भारत की रक्षा के लिये आ जावेगी तो वह भी अब्दाली के विरुद्ध आक्रमण में जन और धन से मराठों की पूरी सहायता करेगा।[२]

इसके कुछ समय बाद ही अहमदशाह ने राजा सूरजमल को खिराज देने एवं अपने झण्डे के नीचे सेवार्थ उपस्थित होने के लिए लिखा। सूरजमल अब्दाली की सेना में उपस्थित नहीं होना चाहता था। उसे भय था कि वहां जाने पर उसकी स्थिति भी इमाद जैसी हो जायगी। सूरजमल के लिए अहमदशाह की इतनी बड़ी शक्तिशाली सेना के साथ अविलम्ब सामना करना भी कठिन था। अतः उसने अब्दाली के साथ युद्ध की तैयारी करने के लिए कुछ समय निकालने के लिये टालम-टोल की नीति का अनुसरण किया। समझौता वार्ता प्रारम्भ करने के लिए अपना एक दूत अफगानों के डेरे पर भेजा।[३] साथ ही उसने अफगान मंत्री को दो लाख रुपये रिश्वत दिये। मथुरा की पवित्र नगरी के सुरक्षार्थ तथा अब्दाली का मार्ग अवरुद्ध करने के लिए सूरजमल ने अपने नवयुवक एवं निर्भीक पुत्र जवाहर के नेतृत्व में पांच-छः हजार सैनिकों को बल्लभगढ़ के दुर्ग में रखा और वह स्वयं मथुरा छोड़ तीव्रगति से कुम्हेर के लिए रवाना हुआ। वहां पहुंच कर पूर्णरूप से युद्ध की तैयारी

१. हालात-ए-अहमदशाह अब्दाली पृ० १४; गण्डा० पृ० १७२; फाल्क०, २, पृ० ८२। अन्ताजी माणकेश्वर से सूरजमल ने कहा ५० हजार सेना के साथ ईरान के बादशाह ने हिन्द के बादशाह को पराजित कर दिया है और किसी ने उस पर एक भी गोली नहीं चलायी और न ही किसी ने उसका सामना करने में अपने प्राणों की आहुति दी, तो फिर मैं क्या कर सकता हूँ। ऐ० प०, २१, पत्र सं० १००।

२. फाल्क०, २, पृ० ८३; गण्डा०, पृ० १७२।

३. फाल्क० २, पृ० ८२।

में लग गया । डीग, कुम्हेर और भरतपुर के अपने तीनों दुर्गों में रसद् और तोपें रहकलें, शीशा आदि युद्ध की अन्य सामग्री बड़ी मात्रा में एकत्रित करने लगा ।[१]

इसी समय अहमदशाह ने रसद् व घोड़ों के लिये घास आदि एकत्रित करने एक दल फरीदाबाद की ओर भेजा ।[२] यह दल लूटमार करता हुआ बल्लभगढ[3] के पास तक पहुंच गया । बल्लभगढ़ में जवाहर घात लगाये बैठा हुआ था । जाट राजकुमार ने अपनी सेना के साथ अचानक इस दल पर आक्रमण कर दिया और अफगानों के करीब १५० घोड़े हस्तगत कर लिये ।[४] यह समाचार सुन कर दुर्रानी आग बबूला हो उठा, लेकिन वह जाट शक्ति से भी परिचित था । चातुर्यपूर्ण नीति से जाट राजकुमार को बन्दी बनाने के लिये उसने अब्दुसमद मुहम्मद जाई को निर्देश दिया । अब्दाली के निर्देश के अनुसार ही अब्दुसमद खां आगे बढ़ा । उसने अपनी सेना का एक छोटा दल फरीदाबाद से बल्लभगढ़ की ओर रवाना किया और शेष सेना के साथ वह स्वयं फरीदाबाद के पास जंगल में छिप गया । शाह का अनुमान सही निकला । जवाहरसिंह इस छोटे दल को देख कर, अहम् और उत्साह के साथ उसका पीछा करता हुआ फरीदाबाद के पास जा पहुँचा जहां अफगानों की छिपी हुई सेना मोर्चा लगाये हुये थी । निर्भीक किन्तु अनुभवहीन जाट राजकुमार जवाहरसिंह अपनी सेना सहित दुर्रानी की सेना के घेरे में फंस गया । फिर भी वह युक्तिपूर्वक अफगानों के घेरे से बच निकला और भाग कर बल्लभगढ़ के किले में जा पहुंचा । इस अभियान में उसके बहुत से सैनिक मारे गये एवं बहुत सा लूट का सामान उसे वहीं छोड़ कर भागना पड़ा । अफगान सेना आगे बढ़ी और आस पास के गांवों को लूट कर उसने अपनी लूट का बदला लिया । किन्तु जवाहरसिंह सुरक्षित बच गया ।[५]

डीग, कुम्हेर और भरतपुर के जाट दुर्गों पर अपना अधिकार कायम करने के लिये अहमदशाह दुर्रानी फरवरी २२, १७५७ ई० को दिल्ली से रवाना हो कर खिजराबाद गया और वहां दो दिन ठहर कर फरवरी २५, को वह बदरपुर पहुँचा ।

---

१. जाट्स०, पृ० ९८ ।
२. जाट्स०, पृ० ९८; गण्डा०, पृ० १७३ ।
३. बल्लभगढ दिल्ली से २२ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित हैं ।
४. जाट्स०, पृ० ९९ ।
५. जाट्स०, पृ० ९९; गण्डा०, १७३ ।

दूसरे दिन वह फरवरी २६, को फरीदाबाद पहुँच गया। इसी दिन अब्दुसमद खां जाटों के विरुद्ध चढाई करके लौटा था। तब उससे अब्दाली को ज्ञात हुआ कि जवाहरसिंह उसके जाल में से बच कर वल्लभगढ के दुर्ग में जा पहुँचा था। वल्लभगढ किले को उपेक्षणीय समझ कर अहमदशाह ने उसकी ओर पहले ध्यान नहीं दिया था लेकिन अब उसने अपना विचार बदल कर उस पर अविलम्ब हमला करने का निश्चय किया।[1]

उसने अपने सेनापति जहान खां और रूहेला सरदार नजीबुद्दौला के नेतृत्व में २० हजार सेना भेज कर आदेश दिया कि "इन दुष्ट जाटों के प्रदेश को लूटो और उसे बरबाद कर डालो। मथुरा नगर हिन्दुओं का धार्मिक स्थान है, उसको पूर्ण रूप से विनष्ट कर दिया जाये। उनके प्रत्येक शहर और जिले को लूटो और व्यक्तियों को कत्ल कर डालो। अकबराबाद (आगरा) तक एक भी स्थान न छोड़ो।"[2] इससे भी अब्दाली को सन्तोष नहीं हुआ, उसने यह भी निर्देश दिया कि "जहां कहीं वे जायें खूब लूटें और मारें। जो भी धन-सम्पत्ति वे लूटेंगे, वह उनके पास ही रहने दी जायगी। जो भी हिन्दुओं के सिर काट लावें, वह उनको प्रधान वजीर के डेरे के पास डाल दें, जिससे उसका एक मीनार बनाया जाय। इनकी पूर्ण रूप से गणना की जावेगी व प्रत्येक सिर के बदले में राजकोष से पांच रुपये दिये जावेंगे।"[3]

अफगान सेनापति जहान खां और रूहेला सरदार नजीबुद्दौला ने २० हजार सेना के साथ अब्दाली के आदेश का अक्षरश: पालन करने के लिए सर्व प्रथम मथुरा की ओर प्रस्थान किया।[4] परन्तु इस ब्रज-भूमि का संघर्ष किये बिना पतन होने वाला नहीं था। जवाहरसिंह व जाट कृषकों ने दृढ निश्चय कर लिया था कि इन लूटेरों का वे दृढता से मुकाबला करेंगे तथा उनके मरणोपरान्त ही वे ब्रज की राजधानी में प्रवेश कर सकेंगे। मथुरा के बाहर आठ मील उत्तर की ओर चौमुहा गांव के बाहर जवाहरसिंह पांच हजार सैनिकों के साथ फरवरी २८, १७५७ ई० को अफगानों का सामना करने को आ डटा। सूर्योदय से सूर्यास्त के एक घंटे पूर्व तक घमासान युद्ध

---

१. जाहूरू०, पृ० ६६; गण्डा०, पृ० १७३-१७४।
२. जाहूरू०, पृ० ६६; गण्डा०, पृ० १७५।
३. जाहूरू०, पृ० ६६; गण्डा०, पृ० १७५।
४. गण्डा०, पृ० १७६।

होता रहा। जवाहर के करीब तीन हजार वीर सैनिक काम आये।[१] जवाहरसिंह ने भी प्राणों की बाजी लगा कर सामना किया। अन्त में विजय की कोई आशा न देख कर जवाहर अपनी शेष सेना के साथ वल्लभगढ़ को भाग गया।[२]

मथुरा को अरक्षित छोड़ कर अन्ताजी माणकेश्वर और शमशेर बहादुर के साथ जवाहरसिंह भी अपने प्राण बचा कर फरवरी २८, की रात्रि को वल्लभगढ भाग गया था। लेकिन् उस पर आई विपत्ति का यों अन्त नहीं होने वाला था। दूसरे दिन अहमदशाह ने स्वयं वल्लभगढ का आ घेरा और वह स्वयं घेरे का संचालन करने लगा।[३] उसकी पांचों तोपों ने आग उगलना प्रारम्भ किया। इन तोपों के मुंह ऊँचे करके इस प्रकार से रखे गये थे कि सम्पूर्ण गढ को तहस-नहस किया जा सके। लोहे के दो अर्ध गोले को परस्पर जोड़ कर तोपों के ये गोले बनाए गये थे जो भूमि पर गिरने पर खुल जाते थे। इन पांचों के कोण निरन्तर बदले जाते थे। दो दिन (२ और ३ मार्च) तक जवाहर ने साहस और निर्भीकता के साथ दुर्ग की रक्षा की। लेकिन् आग उगलती हुई अफगान तोपों के समक्ष दुर्ग की रक्षा करना बहुत ही कठिन हो गया। दुर्ग की प्रत्येक वस्तु अफगान तोपों की आग से राख में परिणित होने लगी। तब मार्च ३, १७५७ ई० की प्रशान्त रात्रि में जवाहर ने किले में कुछ सैनिक छोड़ दिये ताकि अफगानों को यह विश्वास रहे कि किला रिक्त नहीं है, और अन्ताजी माणकेश्वर और शमशेर बहादुर को भी साथ लेकर वह दुर्ग की सुरंग में होकर जमुना की ओर से निकल भागा। किले में छोड़े हुए अल्प संख्यक सैनिक अफगान सेना के सामने अधिक समय तक न ठहर सके और उन्होंने शुक्रवार मार्च ४, १७५७ ई० को अफगान सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। दुर्रानी ने उन सैनिको को कत्ल करवा दिया एवं दुर्ग पर अधिकार कर लिया। गढ में उसको १२ हजार नकद रुपये, सोने चांदी के बर्तन, १४ घोड़े, ११ ऊँट तथा अतुल अन्न भण्डार और वस्त्र प्राप्त हुए।[४]

जवाहरसिंह व उसके सरदारों को इस प्रकार किले से भाग निकलने के समा-

---

१. राजवाड़े०, १ प० सं० ६३। ता० आ०, प० १०६ अ०, के अनुसार दोनों पक्षों के करीब दस-बारह हजार सैनिक मारे गये।

२. फाल०, २, पृ० ८५; जाट्स०, पृ० १०२; गण्डा०, पृ० १७७।

३. जाट्स०, पृ० १००; गण्डा०, पृ० १७६।

४. ता० आ०, प० १०३ब-१०५अ; जाट्स० पृ० १००; गण्डा पृ० १७६।

चार जान कर शाह आश्चर्य चकित रह गया। दुर्रानी तो शत्रु का पूर्ण दमन करना चाहता था। अतः उसने तुरन्त एक सेना उसका पता लगाने के लिये भेजी। जवाहर ईरानियों की पोशाक पहने जमुना के खादरों में छिप गया। दो दिन व दो रात पानी पीने के लिए भी बाहर नहीं निकला। जवाहर का इस प्रकार से हाथ से निकल जाने पर अहमदशाह को बड़ा क्रोध आया। अब्दाली दो दिन तक किले में ही ठहरा रहा। सेना को लूटने तथा कत्लेआम का आदेश दे दिया।[1] इस कुकृत्य का आंखों देखा वर्णन उसके पड़ाव में रहने वाले एक सैयद ने किया। उसके अनुसार "अर्ध रात्रि के समय सैनिक लूटमार करने के लिये डेरे से बाहर निकलते थे। लूटमार का प्रबन्ध इस प्रकार था कि एक घुड़सवार घोड़े पर सवार होकर दस से बीस तक दूसरे घोड़ों को एक-दूसरे की पूंछ से बांध कर ले जाता था जैसे कि एक ऊंट को दूसरे ऊंट की पूंछ से बांध देते हैं। सूर्योदय के एक घण्टे पूर्व मैंने उन्हें वापस आते देखा। प्रत्येक सवार सब घोड़ों पर लूट का सामान लाद कर लाया था। सब से आगे बन्दी लड़कियां व गुलाम चलते थे। व्यक्तियों के सिर काट कर कपड़ों में बांध कर बन्दियों के सिर पर रख कर लाये जाते थे। यह क्रम रोजाना चलता रहा। कटे हुए सिरों को मीनार के रूप में चुन दिया जाता था, जो व्यक्ति इन सिरों को ढो कर लाते थे, उनसे अनाज पिसवाया जाता था। अन्त में उनके सिर भी काट लिये जाते थे। बल्लभगढ़ से आगरा तक यही हाल होता रहा। इस प्रान्त का कोई भी अभागा भाग कर इस दुर्भाग्य से नहीं बच सका।"[2]

उधर अपने स्वामी अब्दाली के आदेश से इसी प्रकार का अत्याचार करने के लिए अफगान सेनापति जहान खां फरवरी २८, को रवाना हुआ और जवाहरसिंह को पराजित कर उसने मार्च १, के दिन अरक्षित मथुरा नगर में प्रवेश किया। इस पवित्र नगर में अनेक व्यक्ति बाहर से बसन्त ऋतु के सुहावने समय का आनन्द प्राप्त करने तथा होली के पर्व पर आये हुए थे, जो दो दिन पूर्व मनाया जा चुका था। जहान खां ने इन निःसहाय व्यक्तियों को लूटने, उनके कत्लेआम तथा आग लगाने के आदेश दे दिये। चार घण्टे तक नरसंहार होता रहा। वहां ऐसा भीषण हत्या काण्ड मचा था कि सरकार के अनुसार वहां रहने वाले कतिपय मुसलमानों को भी अपने प्राणों की रक्षा करने के लिये विशेषतया यह प्रमाणित करना पड़ा था कि वे

---

१. कानूनगो पृ० १००-१०१; सरकार, पृ० १३६ ।

२. कानूनगो, पृ० १०१-१०२ पर स्मिथ पृ० ६०, से उद्धृत ।

सचमुच मुसलमान थे। मुसलमान सैनिकों ने खण्डित प्रतिमाओं को पालो की गेंद की तरह इधर-उधर उछाला।[1]

यों वहां हिन्दुओं के रक्त से होली खेल कर, जहान खां उसी दिन वापस चला गया। लेकिन् नजीबुद्दौला अपनी सेना के साथ तीन घन्टे तक और वहां ठहरा रहा। उसने बहुत सा धन लूटा और बहुत सी स्त्रियों को पकड़ कर ले गया।[2]

ध्वस्त मथुरा नगरी से निकल जहान खां आस पास के प्रदेश में प्रलयकारी धूम मचाता रहा। मथुरा से सात मील दूर स्थित वृन्दावन भी नहीं बच सका और वहां के अनेक मन्दिरों से उसने अतुल धन सम्पत्ति प्राप्त की। मार्च ६, को यहां भी घोर नरसंहार किया गया। जहान खां स्वयं ने अपनी डायरी में लिखा है कि इस संहार से "वायु ऐसी दूषित हो गई थी कि न मुंह खोला जाता था और न सांस ली जाती थी।"[3]

अब्दाली बल्लभगढ पर अधिकार करने के दो दिन बाद अपने सेनापति के कृत्यों को देखने के लिये स्वयं मार्च १५, १७५७ ई० को मथुरा जा पहुँचा।[4] वहाँ से एक सेना उसने गोकुल को लूटने के लिये भेजी। यहां भी उसी प्रकार नरसंहार हुआ। यहां के चार हजार नागा सन्यासियों ने इस निश्चय के साथ मुकाबला किया कि वे उन्हें इस भूमि पर पैर नहीं जमाने देंगे। दो हजार सन्यासी लगभग इतने ही अफगानों को मार कर गोकुल की भूमि पर सो गये। बंगाल के सूबेदार जुगलकिशोर ने अब्दाली को जब यह बताया कि इन भभूत लगाये सन्यासियों के पास धन नहीं हैं[5] तब अब्दाली ने अपनी सेना को वापस बुला लिया। अब धन एकत्र करने के लिये अब्दाली ने जहान खाँ और नजीब को आगरा भेजा।[6] और स्वयं डीग की तरफ रवाना हुआ। लेकिन् मथुरा के निकट उसके डेरों में हैजा फैल गया।[7] प्रतिदिन १५०

---

१. ता० आ०, प० १०५अ–१०६अ; फाल०, २, पृ० ८५; जाट्स० पृ० १०२।
२. फाल०, २, पृ० ८५; गण्डा, पृ० १७७–१७८।
३. फाल०, २, पृ० ८६; गण्डा०, पृ० १७६।
४. फाल०, २, पृ० ८७; जाट्स०, पृ० १०५।
५. फाल०, २, पृ० ८७; गण्डा०, १७६।
६. ता० आ०, प० १०६अ।
७. अधिकांश इतिहासकारों ने लिखा है कि हैजा महावन में अफगान डेरे में फैल गया जो कि उचित नहीं लगता, क्योंकि महावन जमुना के पूर्वी किनारे पर स्थित है; जबकि मथुरा और डीग उसके पश्चिमी किनारे पर। यहां महावन के स्थान पर मधुवन होना चाहिए जो कि मथुरा के निकट है और डीग के रास्ते पर है।

सैनिक मरने लगे। कोई औषधि उपलब्ध नहीं थी। इमली का भाव सौ रुपये प्रति सेर हो गया था। अतः अब्दाली के लिए भारत से वापस लौटने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था।[१]

वापस लौटने के लिए वह शेरगढ पहुँचा। अफगान बादशाह ने अन्तिम निराशामय प्रयास किया कि जाट राजा से कुछ न कुछ धन अवश्य प्राप्त कर ले। उसने बंगाल के सूबेदार जुगलकिशोर और एक अफगान अधिकारी को अपना दूत बना कर, धमकी भरे पत्र के साथ सूरजमल के पास भेजा कि, यदि वह खिराज़ देने की नीति में आनाकानी करता रहा तो उसके डीग, कुम्हेर और भरतपुर के किलों को ध्वस कर, उन पर अधिकार कर लिया जावेगा।[२] लेकिन् जाट राजा इससे भयभीत होने वाला नहीं था। वह जानता था कि अब्दाली का भारत से लौटना निश्चित है, फिर भी अब्दाली की वास्तविक इच्छा का पता नहीं चल पाया।[3] इसलिए उसने दूतों से समझौता वार्ता जारी रखी और अहमदशाह अब्दाली को ५ लाख रुपये खिराज़ के और उन्हे दो लाख रुपये रिश्वत देने का भी वचन दिया। दुर्रानी ने शेरगढ़ से दिल्ली की तरफ लौटना प्रारम्भ किया जब दिल्ली में स्पष्ट हो गया कि वह कन्धार लौट रहा है, तो तेज चलने वाले ऊँट सवार के द्वारा यह समाचार सूरजमल को मिला,[४] तब तो उसने तत्काल ही अब्दाली के उन दोनों दूतों को अपने दुर्ग से बिना कुछ दिये निकाल दिया। इस प्रकार अब्दाली को जाटों के राज्यकोष से एक पैसा भी प्राप्त नही हो सका।[५]

(४) नवाब फर्रुखनगर के साथ संघर्ष:

पानीपत के तृतीय युद्ध के तीन महीने बाद सूरजमल ने अनुभव किया कि अब उस पर मराठों तथा अब्दाली का कोई दबाव नही रह गया। अतः उसने अपने राज्य का विस्तार प्रारम्भ किया। सन् १७६३ ई० तक उसने अपना राज्य उत्तर की ओर दिल्ली से बीस मील दूर सराय-ख्वाजा-बसन्त तक बढ़ा लिया। दिल्ली से पश्चिम की ओर वह अपने पुत्र जवाहर के लिये एक छोटा सा पृथक राज्य स्थापित करने में जुट

---

१. जाद्‌स०, पृ० १०५; गण्डा०, पृ० १८१।
२. गण्डा०, पृ० १८२–१८३।
३ पाल०, २, पृ० ६६।
४. पाल०, २, पृ० ६६; गण्डा पृ० १८३।
५. जाद्‌स०, पृ० १०७; गण्डा, पृ० १८४।

गया और तदर्थ उसने एक सेना के साथ जवाहरसिंह को हरियाणा प्रदेश विजय करने के लिए भेजा। दूसरी सेना नाहरसिंह के साथ दोआब में भेजी कि अब्दाली के आक्रमण से उन क्षेत्रों में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी, उसे पुनः स्थापित करे। साथ ही पूर्व में रूहेलों की गतिविधियों पर निरीक्षण करता रहे।[1]

जवाहरसिंह ने सर्व प्रथम फर्रुखनगर के नवाब मुसावी खां पर आक्रमण कर दिया,[2] क्योंकि वह उन मेवातियों को आश्रय दे रहा था जो चारों ओर के प्रदेशों में लूटमार करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। जवाहरसिंह इनका दमन करने को तत्पर हुआ। ज्यों ही जवाहरसिंह सुनता कि मेवातियों ने कहीं लूटमार की है तो वह उनका पीछा करता और उन्हें पकड़ कर निर्दयता के साथ कत्ल करने लगा। लेकिन् प्रसिद्ध मेवाती डाकू सल्वानिया को दण्ड देना कठिन कार्य था। तोरू दुर्ग का एक बलोची सरदार असदुल्ला खां इसको आश्रय देता था,[3] क्योंकि अपनी लूट से प्राप्त धन में से कुछ भाग सल्वानिया उसे भी दे दिया करता था। अपने दस सवारों के साथ साल्वानिया अपने गुप्त आश्रय स्थान से निकल कर डीग किले के पास तक लूटमार किया करता था। उसके अत्याचारों का विरोध करना किसी के लिए सम्भव नहीं जान पड़ता था।[4]

जवाहरसिंह को यह स्पष्ट दिख पड़ा कि जब तक सल्वानिया के शरणदाता पर आक्रमण नहीं किया जायगा, तब तक उसका दमन करना कठिन है।[5] नुरुद्दीन के अनुसार सूरजमल ने प्रमुख बलोची सरदार मुसावी खां को पत्र लिखा कि विद्रोही व शान्ति को भंग करने वाले सल्वानिया को शरण न दें।[6] लेकिन् द्रव्य लाभ ने उसे स्वार्थांध बना दिया था। अतः उसने सूरजमल की मांग को अस्वीकृत कर दिया।[7] तब तो जवाहरसिंह ने सल्वानिया के शरणदाता असदुल्ला खां पर आक्रमण कर दिया। इस पर मुसावी खां के नेतृत्व में समस्त बलोचियों ने उसका सामना किया। बलोचियों के साथ हुए इस युद्ध में जवाहर को कोई निर्णायक सफलता प्राप्त नहीं

---

१. वैडल०, पृ० ८८; फाल०, २, पृ० ३२५–३२६; जाट्स०, पृ० १४६।
२. जाट्स०, पृ० १४८।
३. फाल०, २, पृ० ३२८।
४. वैण्डल०, पृ० ८८।
५. फाल०, २, पृ० ३२८।
६. नुरुद्दीन० रशीद०, पृ० ६६।
७. फाल०, २, पृ० ३२८।

हुई । परन्तु जवाहर इससे निराश नहीं हुआ और पूर्ण तैयारी और अधिक उत्साह के साथ उसने उस पर पुनः चढ़ाई की ।

नबीबुद्दौला फर्रुखनगर के नवाब मुसावी खां का आश्रयदाता था । अतएव उसने सूरजमल को लिखा कि फर्रुखनगर के बलोची उसके संरक्षण में हैं, इस कारण उन्हें नहीं सताया जावे । सूरजमल ने जवाब दिया कि डाकुओं को छिपाने वाले व्यक्ति को तो सजा मिलनी ही चाहिये ।[1]

जवाहरसिंह ने बलोचियों के शक्तिशाली और मुख्य सरदार फर्रुखनगर के नवाब, मुसावी खां पर आक्रमण किया । सूरजमल भी समस्त सेना व बहुत सी तोपें आदि लेकर जवाहरसिंह की सहायतार्थ वहां जा पहुंचा ।[2] जाट सेना दो महीने तक किले को घेरे रही । निर्भीक बलोची सरदार भी दुर्ग में डटा रहा और दो महीने तक जाट सेना का सफलतापूर्वक मुकाबला करता रहा । फर्रुखनगर के सुदृढ़ किले की दीवारें मिट्टी की बनी हुई थी । इसलिये सूरजमल के तोपखाने की मार का भी उस पर कोई प्रभाव नही पड़ रहा था । लेकिन जवाहरसिंह व उसका पिता सूरजमल अपने दृढ़ संकल्प पर अडिग थे । आत्म समर्पण करवाने के लिए वे मुसावी खां पर अत्यधिक दबाव डाल रहे थे । मुसावी खां के सम्मुख यह कठिन समस्या उपस्थित हो गई थी कि अब वह क्या करे ? छोटे से किले मे रसद की समस्या भी शीघ्र उत्पन्न होने वाली थी । अतः दुर्ग में अधिक दिन ठहरना सम्भव नही था और न दुर्ग से निकल कर उस विशाल जाट सेना के साथ युद्ध करना उचित जान पड़ता था, एवं उसने सूरजमल को लिखा कि यदि गंगाजलि उठा कर सूरजमल उसे आश्वासन दे कि बाहर निकल कर चले जाने पर सूरजमल उस पर आक्रमण नहीं करेगा तो वह किले को खाली कर देगा ।[3]

उस दुर्ग पर अधिकार करना कठिन हो रहा था । अतः सूरजमल ने धूर्तता-पूर्ण नीति अपनाई और मुसावी खा की मांग को स्वीकार कर, उसने मुसावी खां को सुरक्षा का वचन दे दिया । तब अपने कुटुम्ब के साथ मुसावी खां किले से बाहर निकला, परन्तु उसे [illegible] फिर डीग के किले मे भेज दिया गया । इस प्रकार

श्री महावीर जी (राज.)

---

१. इरविन, पृ० ८८-८९ ।

२. जादू० पृ० १४८ ।

३. इरविन, पृ० ८९; फाल०, २, पृ० ३२८; जादू०, पृ० १४८ ।

फर्रूखनगर के दुर्ग पर दिसम्बर १२, १७६३ ई० के लगभग जाटों का अधिकार हो गया।[1]

इन दिनों नजीबुद्दौला नजीबाबाद में बीमार था तथापि मुसावी खां के सहायतार्थ वह वहां से रवाना हुआ और जब दिसम्बर १४, १७६३ ई० को वह दिल्ली पहुंचा तब वहाँ उसे मालूम हुआ कि सूरजमल ने धोखे से मुसावी खां को बन्दी बना लिया है।[2] अब पत्र लिखकर विरोध प्रकट करने के अतिरिक्त नजीब के हाथ में कुछ नहीं रह गया था। सूरजमल स्वयं भी नजीबुद्दौला से युद्ध करने को अब समुत्सुक था। अतः उसने दस हजार सेना के साथ जवाहरसिंह को फर्रुखनगर में ही रहने दिया और वह स्वयं नजीबुद्दौला से युद्ध करने के लिये प्रस्थान किया। नजीबुद्दौला के साथ हुए इस युद्ध के समय जवाहर फर्रुखनगर में ही था और सूरजमल की मृत्यु की सूचना मिलने के बाद ही फर्रुखनगर से डीग के लिए रवाना हुआ।[3]

---

१. फाल०, २, पृ० ३२८-३२९।

२. फाल०, २, पृ० ३२९। कानूनगो (जाट्स०, पृ० १४८ फु० नो०) के अनुसार नजीबुद्दौला को यह समाचार नवम्बर २५, १७६३ ई० को प्राप्त हुए थे। परन्तु यदुनाथ सरकार द्वारा निर्धारित तारीख ही मान्य करना उचित जात पड़ता है, क्योंकि ये दोनों ही कथन दिल्ली क्रानिकल के उल्लेख पर ही आधारित हैं।

३. फाल०, २, पृ० ३२९-३३०।

३ सूरजमल की मृत्यु और उत्तराधिकार के लिए संघर्ष

(१) सन् १७६३ में भरतपुर राज्य :

भरतपुर राज्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। तत्कालीन राजा सूरजमल ने अपनी बुद्धिमानी, योग्यता और नीति-निपुणता से इस राज्य की सीमाओं को बहुत बढ़ा दिया था। भरतपुर क्षेत्र के अतिरिक्त मथुरा का जिला, आगरा, अलवर, धौलपुर, हाथरस, मैनपुर, कोइल (अलीगढ़), एटा, मेरठ, रोहतक, मेवात, रेवाड़ी, गुड़गांव और फर्रुखनगर[1] सूरजमल के अधिकार में थे। गंगा नदी इस राज्य की पूर्वी सीमा बनाती थी और चम्बल दक्षिणी सीमा पर थी। उत्तरी सीमा दिल्ली के पास बल्लभगढ़ तक थी। पूर्व से पश्चिम में इस राज्य का विस्तार दो सौ मील तथा उत्तर से दक्षिण तक एक सौ चालीस मील था।[2]

(२) सूरजमल की मृत्यु और विभिन्न दावेदार :

सूरजमल को अपने जाट वंश की उच्चता पर अभिमान था। अतः दिल्ली पर अधिकार करने की उसे उत्कट अभिलाषा थी। फर्रुखनगर के नवाब मुसावी खां को पराजित करने के साथ ही उसे अपनी इच्छा पूर्ति करने के लिए एक और बहाना भी मिल गया था। बिलोचियों ने नजीबुद्दौला से सहायता की प्रार्थना की थी। इस समय नजीबुद्दौला अस्वस्थ था और नजीबाबाद में ठहरा हुआ था।[3] फिर भी मुसावी खां की सहायता के लिये वह नजीबाबाद से रवाना हुआ और दिसम्बर १४,

---

१. फर्रुखनगर—गुड़गांव तहसील में स्थित यह कस्बा गुड़गांव नगर से कोई १२ मील पश्चिम में है।

२. जाट्स०, पृ० १६७; मट्टू०, पृ० २५१।

३. इण्डिया० ईलियट०, ८, पृ० ३६३; दि० म्रा०, पृ० १२८; फाल०, २, पृ० ३२६।

को दिल्ली पहुंचा। वहां उसे पता चला कि फरुखनगर पर सूरजमल का अधिकार हो गया, तब उसके पास विरोध प्रकट करने के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया था। उसने सूरजमल को लिखा कि उसने रुहेलों के आश्रित विलोचियों पर हमला करके मित्रता भंग कर दी है। अब किला वह स्वयं रख ले किन्तु मुसावी खां को मुक्त कर दें, क्योंकि मुसावी खां के साथ उसकी मैत्री है।[१]

सूरजमल ने पत्रोत्तर दिया कि "ये व्यक्ति मेरे शत्रु हैं। मेरे साथ आपकी मैत्री अवश्य है, लेकिन आपने जब नजीबाबाद से कूच किया, उस समय मैं फरुखनगर को घेरे हुआ था। अतः इस बात को सब लोग जान गये थे कि आप मुझ पर ससैन्य चढ़ाई कर रहे थे। यदि इस बीच में किला नहीं ले लेता तो आप मेरे विरुद्ध मुसावी खां से मिल जाते। यह विचार आपके मन में था। इसलिये आपने वचन भंग कर मित्रता का पहले ही उल्लंघन कर दिया है।"[२] सूरजमल बहुत क्रुद्ध हो गया था। उसने अपने रास्ते के कांटे को उखाड़ फैंकने का निश्चय किया। मीरबख्शी की कमजोरी को दृष्टिगत रखते हुए, गिर्द की सुबेदारी का प्रश्न सूरजमल ने उठाया। शहर के चारों ओर के परगनों की सुबेदारी उसे देने के लिये उसने दबाव डाला। नजीबुद्दौला यह जानता था कि राजधानी के चारों ओर के परगने शत्रु के हाथ में देना अपने आपको दिल्ली शहर के विशाल कारागार में बन्द करने के समान होगा। वह केवल सिकन्दरा और कुछ अन्य परगने जाट राजा को देने के लिये तैयार था, किन्तु सूरजमल इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ।[३] नजीबुद्दौला सूरजमल के प्रताप और सैन्य शक्ति से भयभीत था। उसने जाट राजा के पास सधि प्रस्ताव लेकर याकूब अली को भेजा और सूरजमल से अपने दुरवस्थित सम्बन्धों को शान्तिपूर्ण बनाने का अनुरोध किया।[४]

सूरजमल ने शान्ति प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया तथा नजीबुद्दोला को युद्ध करने के लिये आमन्त्रित किया। याकूब अली खां, जो दिसम्बर १६, को सूरजमल के पास पहुँचा था, चार दिन बाद दिसम्बर २३, १७६३ ई० को वापस लौट आया।[५] तदनन्तर सूरजमल ने फरुखनगर की रक्षार्थ जवाहरसिंह के पास दस हजार सेना छोड़

---

१. नुरुद्दीन० रशीद०, पृ० ६७–७०; दि० क्रा०, पृ० १२८।
२. नुरुद्दीन० रशीद०, पृ० ७०; वैण्डल०, पृ० ८६; फाल०, २, पृ० ३२६।
३. जाट्स० पृ० १५०।
४. बिहारी० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५४; हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६३।
५. हरसुख० ईलियट, ८, पृ० ३६३; दि० क्रा०, पृ०, १२८; जाट्स, पृ० १५१।

[छोड़]कर, शेष तीस हजार सेना[1] के साथ नजीबुदौला के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया। [हि]ण्डन नदी के पश्चिमी किनारे पर उसने डेरा डाला। वहां से सेना का एक भाग नदी [प]ार भेजा, जिसने गाजियाबाद के चारों ओर के गांव लूट लिये और उनमें आग लगा दी।[2]

तत्पश्चात् जाट सेना ने हिंडन नदी के पूर्वी तट पर अपना डेरा डाला। अनिच्छुक होते हुए भी अब नजीबुद्दौला को युद्ध के मैदान में उतरना पड़ा। वह नजीबाबाद से तीव्रगति से रवाना हो दिल्ली पहुँचा तथा वहां से अपने पुत्र अफजल खां, जाबिता खां तथा अन्य रुहेला सरदारों और लगभग १० या १२ हजार सैनिकों के साथ दिसम्बर २५, १७६३ ई० को सूर्योदय से पूर्व ही उसने जमुना नदी को पार किया और हिंडन नदी के पश्चिमी किनारे पर अपनी सेना को व्यवस्थित रूप से जमाया।[3] इसी दिन तदनन्तर तत्काल ही दोनों सेनाओं के मध्य घोर संघर्ष प्रारम्भ हो गया, जो सूर्यास्त तक चलता रहा। दिन के तीन बजे तक दोनों सेनाओं में गोलाबारी होती रही। तब सूरजमल ने केवल पांच हजार प्रमुख सैनिकों को साथ लेकर हिंडन नदी को पार किया और रुहेला सेना पर भयंकर रूप से सीधा धावा किया। इस युद्ध में दोनों पक्षों के लगभग एक हजार सैनिक मारे गये।[4]

जब यह घोर युद्ध चरम सीमा पर था तब निर्भीक सूरजमल ने तीस सवारों के साथ रुहेला सेना के मध्य भाग पर धावा किया और वहीं पर लड़ते-लड़ते वीर-गति को प्राप्त हुआ और इस प्रकार पचपन वर्ष की अवस्था में अपने गौरव के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच कर सूरजमल नजीबुद्दौला से युद्ध करता हुआ, हिंडन नदी के किनारे रुहेलों सैनिकों द्वारा एकाएक दिसम्बर २५, १७६३ ई० को मारा गया।[5]

जाट राज्य का प्रधान मंत्री, सेनापति और भरतपुर किले का किलेदार बलराम, मृत राजा के सबसे छोटे पुत्र नाहरसिंह को साथ लेकर, उसी रात सेना के

---

१. बिहारी० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५४।

२. फाल०, २, पृ० ३३०।

३. शाकीर०, पृ० १०५; बिहारी० इस्लामिक, १०, पृ० ६५५; दि० आ०, पृ० १२६; जाद्स०, पृ० १५१।

४. फाल०, २, पृ० ३३०; दि० आ०, पृ० १२६।
जाद्स (पृ० १५२) के अनुसार इस समय सूरजमल के पास छः हजार सैनिक थे।

५. बिहारी० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५५; दि० आ०, पृ० १२६; हबीबुल्ला० ईलियट०, ८, पृ० ३६३; जाद्स०, पृ० १५२।

साथ कूच कर वायुवेग से तीस घण्टे में ही दिसम्बर २७, १७६३ ई० के दिन सूरजमल की मृत्यु का दुःखद समाचार लेकर डीग पहुँच गया।[1] सूरजमल के सिंहासन का वास्तविक उत्तराधिकारी बड़ा पुत्र जवाहर था। लेकिन् प्रधान मंत्री व सेनापति बलराम जवाहर का विरोधी था। वह नाहरसिंह को गद्दी का वास्तविक दावेदार मान कर, उसे सिंहासन दिलाना चाहता था। मृत राजा सूरजमल की भी यही इच्छा थी कि उसका प्रिय पुत्र नाहरसिंह ही उसका उत्तराधिकारी बने। जाति के प्रमुख व्यक्ति यह निश्चय करने एकत्रित हुए कि उत्तराधिकारी किसे माना जावे। नाहरसिंह ने मांग की कि तत्काल ही उसे उत्तराधिकारी मान लिया जावे।[2]

---

१. फाल० २, पृ० ३३४।

२. वैण्डल० पृ० ६५। फाल० (२, पृ० ३३५) के अनुसार नाहरसिंह सूरजमल का मनोनीत अधिकारी था। किन्तु इस उल्लेख का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये कि सूरजमल ने नाहरसिंह को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था, क्योंकि अनेक कारणों से यह बात मान्य करना सम्भव नहीं है। प्रथम तो सूरजमल की मुख्य (पटरानी) रानी किशोरी, जिसने जवाहरसिंह को राजा बनाने के लिये गोद लिया था, का प्रभाव सूरजमल पर इतना अधिक था कि वह कोई भी कार्य उसकी जानकारी के बिना नहीं कर सकता था। रानी किशोरी नाहरसिंह के लिये कदापि स्वीकृति प्रदान नहीं करने वाली थी और उसकी सलाह के बिना नाहरसिंह को उत्तराधिकारी बना देना सूरजमल के लिए सम्भव नहीं था।

द्वितीय, यदि सूरजमल ने नाहरसिंह को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया होता तो जाति के प्रमुख व्यक्तियों को एकत्रित हो, उत्तराधिकारी किसे बनाया जाय इस प्रश्न पर विचार विमर्श करने की आवश्यकता ही नहीं थी।

तृतीय, विद्रोह-प्रिय और युद्ध–रत जवाहर भी इसे कभी सहन नहीं करता। लेकिन् १७५६ ई० के बाद पिता पुत्र में मन मुटाव का उल्लेख किसी भी साधन-सूत्र में प्राप्त नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि सूरजमल की इच्छा तो थी कि नाहरसिंह उसका उत्तराधिकारी बने। लेकिन् जवाहर की महत्त्वाकांक्षाओं को व स्वभाव को दृष्टिगत रखते हुए उसने अपने जीवन-काल में यह बात स्पष्ट रूप से घोषित नहीं की थी। उसकी मृत्यु के बाद प्रधान मन्त्री व सेनापति बलराम ने सूरजमल की इस इच्छा को पूर्ण करने का प्रयत्न किया, क्योंकि बलराम स्वय जवाहर का विरोधी था।

(३) नाहरसिंह व जवाहरसिंह के मध्य संघर्ष :

इस समय जवाहरसिंह फर्रुखनगर में था। अधिकांश उच्च पदाधिकारी व दरबारी जवाहरसिंह से असन्तुष्ट थे, क्योंकि उसका स्वभाव क्रोधी और अधीरतापूर्ण था, साथ ही उसमें आत्म सयम का भी अभाव था।[1] जाति के प्रतिष्ठित व्यक्ति इस महत्त्वपूर्ण मामले का निर्णय करने ही वाले थे कि भाग्यवश उसी समय जवाहर का संदेशवाहक वहां आ पहुंचा।[2] उसने सरदारों से कहा कि अपने स्वामी का साथ छोड़ कर चले आने वालों ने बहुत ही अनुचित कार्य किया था। अब उसका बदला लेने के बजाय वे यह सोच रहे हैं कि उसका उत्तराधिकारी कौन हो। साथ ही जवाहर ने यह भी कहला भेजा कि इस समय वह स्वयं अपने जन्मसिद्ध अधिकार का दावा नहीं करेगा, किन्तु सबसे पहले वह अकेला ही अपनी अल्प सैनिक शक्ति के साथ अपने पिता के घातक पर आक्रमण करके मृत्यु का बदला लेगा। तदनन्तर ही विचार करेगा कि पिता की गद्दी पर बैठने का यथार्थ में कौन उत्तराधिकारी है।[3]

जवाहरसिंह की इस एक ही धमकी से सभी दरबारी व नाहरसिंह जो स्वभावतः भीरु और साहसहीन युवक था, भयभीत हो गये। बलराम ने उसे समझाया और उत्साहित भी करना चाहा, किन्तु डीग में ठहर कर युद्धानुभवी जवाहर से संघर्ष करने का साहस उसमें नहीं था। उसने जान लिया कि पिता की गद्दी प्राप्त करने का अवसर निकल चुका है, अतः कभी उचित अवसर आने पर ही अपने उत्तराधिकार को प्राप्त करने के लिये पुनः प्रयत्न किये जावें। इसलिये वह उसी रात कुम्हेर भाग गया, वहां से अपने कुटुम्बियों व अपने पक्ष के कुछ सरदारों के साथ धौलपुर

---

१. फाल०, २, पृ० ३३५।

२. सूरजमल की मृत्यु के बाद हिडन नदी के किनारे से जब बलराम व नाहरसिंह सेना के साथ डीग के लिए रवाना हुए थे, उसी समय जाट सेना में से जवाहरसिंह के पक्ष का एक व्यक्ति फर्रुखनगर गया—जिसने वहां पहुंच कर जवाहरसिंह को बलराम और नाहरसिंह के इरादे से अवगत कराया। जवाहरसिंह ने तत्काल अपने संदेशवाहक को एक पत्र दे कर डीग के लिये रवाना किया, जिसमें नाहरसिंह और सरदारों की इस बात के लिए भर्त्सना की। कुछ समय बाद वह स्वयं भी डीग के लिए रवाना हो गया।

३. वेन्डल०, पृ० ९५; फाल० २, पृ० ३५५; जाट्स०, पृ० १३१।

भाग गया। वहां पर वह ऐसे उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करने लगा जब पुनः राज्य प्राप्ति का दावा कर सके।[1]

(४) जवाहरसिंह का राज्यारोहण :

एक ही समयानुकूल साहसपूर्ण प्रहार से जवाहरसिंह ने बलराम की सम्पूर्ण योजना समाप्त कर दी थी। बलराम के पास अब ऐसा कोई बहाना नहीं रह गया था कि वह जवाहरसिंह के उत्तराधिकार को चुनौती दे सकता। एक मात्र साधन था नाहरसिंह, किन्तु अब तक वह वहां से भाग चुका था। इसी समय जवाहरसिंह एक तेज चलने वाले ऊंट पर सवार होकर स्वयं डीग आ पहुँचा।[2] बुद्धिमान और नीति निपुण बलराम ने समझ लिया कि अब जवाहर के समक्ष आत्म समर्पण करने के अतिरिक्त अन्य रास्ता नहीं है। उसने जवाहरसिंह के उत्तराधिकार की घोषणा करवा दी। इस प्रकार साहस और चातुर्य से जवाहरसिंह ने अपना खोया हुआ उत्तराधिकार प्राप्त किया और दिसम्बर १७६३ ई० में डीग में राजगद्दी पर बैठा।[3]

---

१. वैण्डल०, पृ० ६५।
२. फाल०, २, ३३५।
३. जाट्स०, पृ० १७२; यदु०, पृ० २७७।

४ जवाहरसिंह का नजीबुद्दौला के साथ संघर्ष

१) संघर्ष के लिए तैयारियाँ :

भरतपुर का प्रतापी जाट राजा सूरजमल नजीबुद्दौला के साथ युद्ध करता हुआ दिसम्बर २५, १७६३ ई० को अचानक मारा गया। तब उसका बड़ा पुत्र जवाहरसिंह ही उत्तराधिकारी बना। स्वभाव से क्रोधी जवाहर अपने पिता के घातक से बदला लेने की क्रोधाग्नि में जल रहा था।[1] लेकिन वह अविलम्ब नजीबुद्दौला पर हमला करने के लिए प्रयत्न नहीं कर सकता था, क्योंकि यद्यपि वह राजा तो घोषित किया जा चुका था तथापि परिस्थितियाँ उसके प्रतिकूल ही थीं। नजीबुद्दौला से बदला लेने के लिये उसने अपने राज्य के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के समक्ष युद्ध का प्रस्ताव रखा, परन्तु किसी ने भी उसका अनुमोदन नहीं किया।[2]

उधर नाहरसिंह जवाहर को गद्दी से उतारने के लिए धौलपुर में मराठों से सांठ-गांठ कर रहा था। बलराम जो कि भरतपुर किले का शासन अधिकारी था, भरतपुर दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये। जवाहर का किले में प्रवेश करना कठिन हो गया। साथ ही सूरजमल का गुप्त खजाना जवाहरसिंह को बताने से भी उसने इन्कार कर दिया। नाहरसिंह के समर्थक कई सरदार डीग और भरतपुर छोड़ कर सुदूर क्षेत्रों में अपनी-अपनी जागीरों को चले गये। वैर के राजा बहादुरसिंह ने जवाहर को राजा मानने से इन्कार कर दिया और वह स्वयं स्वतन्त्र शासक बनने का प्रयास करने लगा। राज्य के अनेक उच्चाधिकारियों ने नवयुवक राजा जवाहरसिंह को राजकीय आय-व्यय के

---

१. शाकीर०, पृ० १०५; इम्पैल०, पृ० ६५; नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ७७; हि० जा०, पृ० १२६; फाल०, २, पृ० ३३४।

२. फाल०, २, पृ० ३३५; जाट्स०, पृ० १६८।

हिसाब देने और शेष द्रव्य लौटाने से मना कर दिया।[1] जवाहरसिंह ने हाल ही में सत्ता प्राप्त की थी, इसलिए वह उन्हें बाध्य भी नहीं कर सकता था। लेकिन् जवाहर को नजीवुद्दौला से युद्ध करने के लिए धन और सैनिक शक्ति दोनों की आवश्यकता थी। अतः उसने अपनी माता किशोरी से आर्थिक सहायता के लिये निवेदन किया, तब उसे राजमाता किशोरी से पर्याप्त धन प्राप्त हो गया। अब उसने अपने सलाहकारों पर व्यंग किया कि यदि वे नजीवुद्दौला के विरुद्ध युद्ध में उसकी सहायता नहीं करेंगे तो धन के बल पर वह विदेशी सैनिकों की सहायता प्राप्त करके नजीव पर हमला करेगा। अतः अनिच्छुक होते हुए भी उन व्यक्तियों को जवाहर का साथ देने के लिए सहमत होना पड़ा।[2]

माता किशोरी से पर्याप्त धन सम्पत्ति प्राप्त करके जवाहर ने नजीब के विरुद्ध लम्बे समय और बड़े पैमाने पर युद्ध करने के लिए तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। सर्व प्रथम उसने अपनी सेना को उसका पिछले दो वर्षों का चढ़ा हुआ सारा वेतन दे कर उसे सन्तुष्ट किया। फर्रुखनगर में जो सेना उसके आधीन थी और जिसने बिलोचियों को परास्त करने में विशेष वीरता का परिचय दिया था, उसे इनाम इकरार दे कर और उत्साहित किया।[3] तत्पश्चात् जवाहर ने अपने अनुभवी राजदूत रूपराम कोठारी को मल्हारराव होल्कर के पास भेज कर नजीब के विरुद्ध संघर्ष में सहायतार्थ उसे आमन्त्रित किया।[4] पेशवा को भी सहायता के लिये लिखा। तब पेशवा ने भी मल्हारराव को संदेश भेजा कि इस युद्ध में वह जवाहर की सहायता करे। जवाहर की ओर से २५ लाख रुपये दिये जाने का वादा करने पर अपनी २० हजार मराठा सेना को लेकर मल्हारराव होल्कर स्वयं नजीब के विरुद्ध सहायता करने के लिए तत्पर हो गया।[5] परन्तु मल्हारराव होल्कर का प्रमुख उद्देश्य दोनों ओर से धन प्राप्त करना ही था।[6] आवश्यक धन देकर जवाहर ने १५ हजार सिक्ख सेना को भी सहायतार्थ आमन्त्रित किया।[7]

---

१. वैण्डल०, पृ० ६७; जाट्स०, पृ० १७२–१७३।
२. वैण्डल०, पृ० ६७; फाल०, २, पृ० ३३५।
३ वैण्डल०, पृ० ६७।
४. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ७८; बिहारी० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५६।
५. वैण्डल०, पृ० ६७; नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८०; पर्शियन०, २, पृ० ५–८; फाल०, २, पृ० ३३५।
६. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८०; पे० द०, २९, प० सं० ७२; फाल०, २, पृ० ३३६; रघु०, पृ० ३१४–१५।
७. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ७९; कनिंघम०, पृ० ६३।

यों ये तैयारियाँ एक लम्बे समय तक चलती रहीं, जिससे नजीब को भी उनका पूरा पता लग गया और वह बहुत भयभीत हो गया। वह इस बात को जान गया कि क्रोधाविष्ट जाट जाति उनसे बदला लेने के लिए खून की नदियाँ बहा देगी। सहायता प्राप्ति हेतु उसने अपने एक दूत मेघराज को अब्दाली के पास कंधार भेजा और प्रार्थना की कि वह इस जाट तूफान से उसकी रक्षा करें।[१] मल्हारराव को जाटों से न मिलने देने के लिए भी नजीब ने प्रयत्न किया। उसने मल्हारराव होल्कर को लिखा कि, "हम दोनों में पुरानी मैत्री है। मैंने आपको पानीपत के युद्ध में सहायता दी थी।"[२] साथ ही उसने जवाहरसिंह की क्रोधाग्नि को भी अनेक प्रकार से शान्त करने का प्रयत्न किया। उसने लिखा कि "जो कुछ होना था सो हो गया। अब यदि युद्ध करने से ही आपके पिता (सूरजमल) पुनः जीवित हो सकते हों तो आप अवश्य ही मुझ से युद्ध करें। मैंने आपके राज्य के किसी भी भाग पर अधिकार नहीं किया, फिर आप व्यर्थ में ही क्यों मुझ से लड़ाई मोल लेते हैं। विजय पराजय तो भगवान के हाथ में है।"[३] लेकिन अपने प्रतापी पिता के घातक को दण्ड देना, जवाहर व समस्त जाट जाति के लिए आत्म-सम्मान एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका था। अतः नजीब के ये सारे प्रयत्न निष्फल ही रहे।[४]

हिडन नदी के किनारे सूरजमल के साथ हुए युद्ध में नजीब को विजय मिली थी, जिसके उल्लास में उसने मध्य दोआब के चार थानों पर अधिकार कर लिया था। जाटों के तहसीलदार बिना सामना किये ही पीछे हट गये थे। जवाहर ने अप्रैल, १७६४ ई० में पुनः उन थानों पर अधिकार स्थापित कर लिया था। बल्लभगढ़ के किले में बहुत सी तोपें और गोला बारूद एकत्रित कर लिया। वह इस किले को अपना मुख्य सैनिक अड्डा बना कर दिल्ली पर हमला करना चाहता था। अपने तोपखाने के मुख्य अधिकारी दिलेरसुख को उसने यहाँ तैनात किया।[५]

(२) जमुना नदी के किनारों पर युद्ध और नजीबुद्दौला के साथ समझौता :

अक्टूबर, १७६४ ई० के अन्त में ६० हजार सेना व १०० बंदूकें अपने साथ लेकर

---

१. फाल०, २, पृ० ३३६।
२. हिस्टॉ० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५६।
३. ऐ० इ०, २१, प० सं० ५८।
४. साकीर० पृ० १०५; फाल०, २, पृ० ३३६।
५. नूरुद्दीन० रसीद०, पृ० ८०–८१; फाल०, २, पृ० ३३६।

जवाहरसिंह ने नजीबुद्दौला के विरुद्ध युद्धाभियान प्रारम्भ किया। मल्हारराव और उसके साथ २० हजार मराठा सैनिक तथा १५ हजार सिक्ख सेना भी युद्ध के समय उसके साथ आ मिलने वाले थे।[1] जवाहरसिंह पलवल पहुँच गया और दूसरे दिन फरीदाबाद पहुँचने वाला है। यह समाचार सुन कर नजीबुद्दौला सचेत और भयभीत हो गया। उसने अपने जमींदार अब्दुल्ला खां बंगश को जवाहरसिंह की गतिविधि का पता लगाने भेजा। जवाहरसिंह के पड़ाव के आस पास तक पहुँच कर उसने नजीब को सूचित किया कि जवाहरसिंह शीघ्र ही एक विशाल सेना के साथ दिल्ली को घेरने वाला है।[2]

नजीबुद्दौला को अब यह बात स्पष्ट हो गई कि जाट शक्ति रूपी तूफान से बचना कठिन है। उसने अपने स्त्री-बच्चों व धन-सम्पत्ति किले से बाहर निकाल कर जिला सहारनपुर के अन्तर्गत सक्करताल[3] भेज दिया। उसने गंगा के पार के कुछ प्रमुख अफगान भाइयों से भी सहायता मांगी। दिल्ली के चारों ओर खाईयाँ खुदवा कर मोर्चे भी लगा लिये।[4]

दिल्ली के सामने पहुँच कर भी अपनी सेना को अपनी सहायक मराठा सेना की प्रतीक्षा में जवाहरसिंह ने रोके रखा। जब उसका मराठा साथी मल्हारराव होल्कर आ पहुँचा, तब पुराने किले के पूर्व की ओर जमुना के तट पर उसने अपना डेरा लगाया।[5] नजीबुद्दौला बुलन्द बाग में शाही किले के नीचे ठहरा रहा और जमुना पर उसने पुल बनवाया ताकि दोआब के इलाके से खाद्य-सामग्री आ सके। उसने स्वयं भूतपूर्व वजीर कमरुद्दीन खां की हेवेली में डेरा डाला। उसके सैनिक नदी के पास रहने लगे। उन्होंने एक खाई खोद कर उसके पीछे मिट्टी की दीवार बनाई और उस पर तोपें जमा दीं। इस प्रकार नगर के दक्षिण-पूर्वी बुर्ज और नदी को मिला दिया गया।[6]

---

१. वैण्डल०, पृ० ६७; बिहारी० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५६; हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६३–३६४; जाट्स०, पृ० १७४।
२. नूरुद्दीन० इस्लामिक०, ७, पृ० २४६–२४७।
३. सक्करताल सोलोनी व गंगा नदी के संगम पर स्थित है।
४. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८१; जाट्स०, पृ० १७४–१७५।
५. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८०; फाल०, २, पृ० ३३७।
६. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८१।

उत्साही जवाहर ने नजीबुद्दौला को चुनौती दी कि इस प्रकार किले में छिपे रहने से भी उसके प्राण नहीं बच सकेंगे। बहादुरों की तरह बाहर आकर शक्ति परीक्षा के लिये आग्रह किया तथा अपनी सेना सहित दिल्ली से १० या १२ मील फरीदाबाद[1] की तरफ पीछे हट कर उसने अफगान सेना को मैदान में आने का अवसर दिया। नजीबुद्दौला इस व्यंगात्मक उक्ति से अत्यधिक क्रोधित हो ससैन्य दिल्ली के किले से बाहर निकला। नवम्बर १५, १७६४ ई० को जवाहर व नजीब में युद्ध प्रारम्भ हुआ।[2] दोनों पक्षों में जम कर घमासान लड़ाई हुई। अन्त में जाट शक्ति के सामने नजीबुद्दौला की सेना के पैर उखड़ गये और पराजित रुहेला सरदार अपनी सेना के साथ वापस किले में जा पहुँचा। इस युद्ध में दोनों पक्षों के एक-एक हजार सैनिक मारे गये।[3]

रुहेलों की इस पराजय से उत्साहित हो जवाहरसिंह ने शाहदरा को लूटा, फिरोजशाह के किले तक आगे बढ़ा और रुहेलों की खाईयों के सामने आ डटा। तब अपने मराठा साथी मल्हारराव होल्कर से आग्रह किया कि वह उन पर आक्रमण करने में सहायता दे। मल्हारराव अपनी सेना के साथ निकला, परन्तु जवाहरसिंह की सेना से बहुत पीछे शेरशाह के किले के पास ही ठहरा रहा, क्योंकि वह नजीब से भी धन प्राप्त कर, उसकी रक्षा का वचन दे चुका था।[4] वह नहीं चाहता था कि नजीब पराजित हो जावे तथा दिल्ली पर जवाहर का अधिकार हो जावे। उसकी नीति यही थी कि जाटों से अधिकाधिक धन प्राप्त करने के साथ ही उनकी शक्ति भी कम करे।[5] जवाहरसिंह ने उसे बार बार आगे बढ़ कर हमला करने की प्रार्थना की, परन्तु उसने सुनी अनसुनी कर दी और वह यह कहता रहा कि जब तक पुराने किले में से सब रुहेलों को न निकाल दिया जाय तब तक आगे बढ़ना उचित नहीं है। उस दिन दोनों ओर से केवल गोलियां चलती रहीं और यदा-कदा कुछ झड़पें भी हुईं, परन्तु जम कर युद्ध नहीं हुआ।[6]

---

१. फरीदाबाद दिल्ली के दक्षिण में १२ मील दूर स्थित है।
२. हि० आ०, पृ० १३०; फाल० २, पृ० ३३६।
३. हि० आ०, पृ० १३०; जाट्स, पृ० १७५।
४. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८०; हिस्टॉरि० इस्लामिक०, १०; पृ० ६५६; फाल०, २, पृ० ३३६।
५. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८०; दे० द०, २६, प० सं० ७६; हिंगणे०, २, प० सं० ५५।
६. फाल०, २, पृ० ३३७।

जवाहरसिंह को जब यह पता चला कि दिल्ली के दक्षिण में नजीब ने खाईयाँ खुदवा रखी हैं, जिनके कारण नगर के निकट नहीं पहुँचा जा सकता, उसने अपनी युद्ध योजना बदल दी। अब उसे अपने मराठा मित्रों पर विश्वास नहीं रह गया था। नवम्बर १६, १७६४ ई० को प्रातःकाल उसने बलराम व अपने गुरु रामकृष्ण महन्त तथा जोधपुर के ब्राह्मण सवाईराम को उसके साथ के एक सौ पचास राठौड़ सैनिक सहित और अपने आठ हजार जाट घुड़सवारों को अमली घाट के पास जमुना पार करने के लिये भेजा। उन्हें यह आदेश दिया गया कि पश्चिमी तट पर रुहेलों के जो भी सवार गश्त लगा रहे हैं, उन्हें खदेड़ कर भगा दिया जावे। पुनः नजीबुद्दौला के नावों के पुल के पूर्वी तट पर जो एक सौ रुहेलें बन्दूकची पहरा दे रहे हैं, उन्हें पराजित कर पुल पर धावा किया जावे। जिससे नजीब की खाईयों में पीछे की ओर से प्रवेश किया जा सके। साथ ही सामने से भी इन खाईयों पर हमला किया जावे, जिससे नजीब की प्रधान सेना उसमें व्यस्त रहे।[1] यदि इस योजना के अनुसार एक दम धावा कर दिया जाता तो वह सफल हो सकता था, परन्तु जाट सवार रास्ते में ठहर कर पटपरगंज की अनाज की सम्पन्न मन्डी को लूटने में लग गये। इस प्रकार उन्होंने बहुमूल्य समय नष्ट कर दिया।[2]

उनकी कूच से धूल के जो बादल उड़ रहे थे, उनसे उनकी सारी गतिविधि का भी पता लग गया। तब शाहदरा से नजीब के पांच सौ तुर्की सवारों तथा नासिर खाँ दुर्रानी के नेतृत्त्व में छः सौ अफगान सवारों ने मिल कर उन पर आक्रमण किया और उन्होने जी-जान से भयंकर युद्ध किया।[3] वे जाटों को आगे नहीं बढ़ने देना चाहते थे, लेकिन जाटों की संख्या अधिक थी, अतः जाटों के आगे वे टिक नहीं सके।[4] नजीब किले की बुर्ज पर बैठा दूरबीन द्वारा इस सारी स्थिति को देख रहा था। उसने खाईयों के अधिकारियों को सचेत किया और चुने हुए एक हजार रुहेलें सैनिकों को नावों द्वारा पूर्वी तट पर भेजा कि वे जाटों को आगे न बढ़ने दें।[5]

ये रुहेलें सैनिक पूर्वी किनारे पर पहुँच गये और नदी के उस किनारे पर के खड्डों में छिप गये। जाट सेना इधर-उधर ध्यान दिये बिना, निडर होकर आगे बढ़

---

१. वैण्डल०, पृ० ९७–९८।
२. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८३-८४।
३. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८४।
४. फाल०, २, पृ० ३३८।
५. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८४।

रही थी. इसी समय उन रुहेलें सैनिकों ने उस पर आक्रमण कर दिया और उनके सेनानायकों को मौत के घाट उतार दिया। दोनों पक्षों के सैनिक घोड़ों पर से उतर पड़े और भूखे भेड़िये की तरह एक दूसरे पर टूट पड़े। सवाईराम और उसके १५० राठौड़ सैनिक इस युद्ध में मारे गये। शेष जाट सेना मैदान से भाग खड़ी हुई, तब रुहेला सेना ने उसका पीछा किया।[१]

जवाहरसिंह भी अपनी सेना की गतिविधि पर पूर्ण रूप से नजर रख रहा था। उसने अपनी सेना पर इस आई हुई विपत्ति को देख कर शीघ्र ही उमरावगिर गुसाईं के नेतृत्व में ७०० नागा सवार उसकी सहायतार्थ भेजे। उनकी सहायता से जाट सेना सर्वनाश से बच गई। सूर्यास्त तक घमासान युद्ध होता रहा। नजीबुद्दौला के सैनिक हार कर अपने डेरों में वापस लौट गये। जवाहरसिंह के सैनिक भी एक घाट पर नदी पार कर पश्चिमी किनारे पर पहुँच गये। इस युद्ध में बलराम के सैनिकों ने बड़ी कायरता दिखाई थी और यदि नागा सवार आ कर प्राण-पण से नहीं लड़ते तो वे सब मारे जाते।[२]

नवम्बर १८, १७६४ ई० को जवाहरसिंह अपने मराठा साथी व समस्त आक्रमणकारी सेना के साथ जमुना को पार करके पूर्वी किनारे पर जा पहुँचा। वहां उसने नदी के किनारे पर तोपें जमा दी तथा नदी पार से ही दिल्ली पर गोले बरसाने शुरू किये, क्योंकि नगर के पूर्व की ओर नदी के किनारे पर कोई दीवार नहीं थी। जवाहरसिंह ने पहले शाहदरा को लूटा,[३] जहां दिल्ली में बेचने के लिये बहुत अधिक धन संग्रहित था। वहां फर्श तक खोद डाले गये, मकान जला दिये गये और सारे नगर को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया।[४] पूर्वी किनारे से राजधानी के पूर्वी भाग के मकानों पर जाट गोले बरसा रहे थे। कुछ गोले शाही महलों के अन्दर भी गिरे, जहां कुछ व्यक्ति भी मरे। दीवान-ए-खास की एक कांच की तिपाई टूट गई। नवम्बर १६, १७६४ ई० को नजीब के सिपाहियों ने जमुना नदी के किनारे की रेती की खाईयों से हट कर नगर के अन्दर मकानों में शरण ली। नजीब ने बुलन्द बाग में फर्श खोद कर नीचे एक कमरा बनवाया, जिस पर तख्तों की छत बनवाई और उस पर मिट्टी डाल दी। एक गज ऊंची मिट्टी की दीवार बना कर उसके पीछे रुहेले छिप गये एवं दुर्ग प्राचीन

---

१. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८५; पाल०, २, पृ० ३३८।
२. नूरुद्दीन, रशीद०, पृ० ८५–८६; पाल०, २, पृ० ३३८ ३३९।
३. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८६–८८; हि० फा०, पृ० १३०।
४. पाल०, २, पृ० ३३९, जादून० पृ० १५५।

पर लगी तोपों से भी अपनी रक्षा करते रहे। जाट तोपों के गोलों से नगर के अन्दर अनेक व्यक्ति मारे गये।[1]

यह गोला-बारी १५ दिन तक चलती रही। प्रतिदिन प्रातः काल जवाहर अपनी तोपों को घसीट कर नदी के तट तक ले जाता था। दिन भर उनसे शत्रु सेना पर आग बरसाई जाती थी। सूर्यास्त के समय पुनः उन्हें वापस अपने डेरे में ले जाता था।[2] जाट तोपों की इस गोला-बारी से सारे दिल्ली शहर में हा-हा कार मच गया। शहर के जनसाधारण का घरों से बाहर निकलना बन्द हो गया वे भूखों मरने लगे। रुहेला प्रमुख की सेना भी भूख से व्याकुल हो गई तथापि उसने आत्म-समर्पण नहीं किया। प्रत्युत नजीबुद्दौला ने मल्हारराव होल्कर से सम्पर्क साध कर संधि वार्ता प्रारम्भ की।[3] तब तो जवाहरसिंह का अपने इन मराठा मित्रों पर से विश्वास उठ गया। इसी बीच सिक्खों के साथ बहुत समय से जवाहरसिंह की जो बात-चीत चल रही थी वह पूरी हो गई, और तब हुए समझौते के अनुसार १२-१५ हजार सिक्ख सेना[4] जनवरी, १७६५ ई० के प्रारम्भ में दिल्ली शहर से कोई १४ मील दूर स्थित बरारी घाट पर जा पहुँची। जवाहरसिंह नदी के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे पर आया और सिक्खों से मिला।[5] उन्होंने उसका अनेक प्रकार से अपमान किया।[6] किन्तु अपने सरदारों व मराठा साथी की असहयोगपूर्ण नीति को दृष्टिगत कर, उसने सिक्खों को

---

१. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८८-८९; दि० क्रा०, पृ० १३०।

२. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८८-८९।

३. फाल०, २, पृ० ३३९।

४. वैण्डल०, पृ० ९७। सिक्ख सेना की संख्या के बारे में विभिन्न आधार ग्रंथों में मतभेद पाया जाता है। जहाँ प्रायः १२-१५ हजार संख्या दी गई है। मिस्किन के अनुसार वह २० हजार थी। (गुप्त०, पृ० २०७ फु० नो०)

५. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ८९।

६ उसे हाथी पर सवार होकर सभा स्थल पर नहीं जाने दिया गया। सिक्ख सरदारों की सभा में उनके ग्रन्थी ने जवाहर के सम्बन्ध में सिक्खों के सेनापति से निवेदन किया कि "सूरजमल के पुत्र जवाहर ने खालसा जी की शरण ली है और वह नानक पंथी सिक्ख बन गया है। वह आप लोगों की सहायता लेकर अपने पिता के खून का बदला लेना चाहता है।" उन्होंने उसके हुक्का बरदार को गालियाँ दीं और उसे अपमानपूर्वक सभा-स्थल से निकाल बाहर किया। (गुप्त०, पृ० २०७-२०८ फु० नो०)।

अपने साथ रखने की अत्यधिक आवश्यकता को अनुभव किया। अतः उसे सिक्खों द्वारा किये गये अपने अनेकानेक अपमानों की भी उपेक्षा करनी पड़ी।[१]

अब युद्ध की नई योजना के अनुसार जाट सेना दिल्ली के सामने पूर्वी तट पर आ खड़ी हुई। मराठा सेना भी उसी तट पर जाट सेना से उत्तर में रखी गई। सिक्ख सैनिक पश्चिमी घाट पर राजधानी के उत्तर और पश्चिम की ओर जम गये।[२] सिक्ख सैनिकों को यह आदेश दिया गया कि वे उत्तरी और पश्चिमी क्षेत्रों से खाद्य-सामग्री न आने दें। इस प्रकार नजीब की सेना घोड़े की नाल के समान तीनों ओर से जाट सेना से घिर गयी। उसके लिए केवल दक्षिण की राह खुली रही, उस ओर भी जाटों का इलाका था और राह में जाटों के आधीन वल्लभगढ़ किला पड़ता था।[३]

इस प्रकार दिल्ली में खाद्य-सामग्री पहुँचने के सारे मार्ग अवरुद्ध थे। प्रतिदिन सिक्ख सवार नगर के बाहर घूमते रहते और शहर की ओर सारी आने वाली खाद्य सामग्री को लूट कर उसे अपने निजी प्रयोग में ले लेते थे। ये सिक्ख सवार नगर के प्राचीर तक पहुँच कर, नजीब की सेना पर छुट-पुट आक्रमण भी यदा-कदा किया करते थे। इनके पास तोपखाना नहीं होने के कारण दुर्ग पर हमला करना, उनके लिए सम्भव नहीं था।[४] जनवरी २५, १७६५ ई० को सब्जी मन्डी के निकट पहाड़ी पर एक घमासान लड़ाई हुई। नजीबुद्दौला और सिक्खों की सेनाओं के बीच हुई, इस लड़ाई में जाटों ने सिक्खों को पूरी सहायता दी थी। इस युद्ध में दोनों पक्षों के अनेक सैनिक आहत हुए या मारे गये। लेकिन इस युद्ध का भी परिणाम पहले की भांति अनिर्णीत ही रहा।[५]

इसके कुछ समय बाद कोई दस सहस्र नागा सन्यासी अवध से वहां आ पहुँचे, जिन्हें जवाहरसिंह ने उमरावगिर गुसाईं व हिम्मतगिर गुसाईं के द्वारा अपनी सेना में रख लिया। एक दिन नदी पार कर जाट सेना के साथ, ये भी दिल्ली नगर के दक्षिण में स्थित बाहरी मोहल्लों तक जा पहुँचे और उन्होंने रुहेलों के साथ जम कर युद्ध किया, किन्तु इन्हें भी पीछे हटना पड़ा।[६]

---

१. गुप्त०, पृ० २०८।
२. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ६०।
३. फाल०, २, पृ० ३४०।
४. कानून०, पृ० १९६।
५. दि० फा०, पृ० १२१; फाल०, २, पृ० ३४१।
६. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ६०।

इस प्रकार फरवरी के प्रथम सप्ताह तक प्रतिदिन बराबर युद्ध होता रहा। लेकिन् खाद्य-सामग्री का आना सिक्ख सेना ने बिल्कुल ही बन्द कर दिया था। मराठों ने भी उसके चारों ओर घेरा डाल रखा था। यों घिरे हुए इस नगर में अब अन्न का अभाव चरम सीमा पर पहुँच गया। शहर के सारे बाजार बन्द थे। सभी व्यक्ति भूखों मर रहे थे। कुछ प्रमुख व्यक्ति नजीबुद्दौला से शहर की जनता से ऋण लेने के लिये आग्रह कर रहे थे।[1] शहर के सहस्रों व्यक्ति अपनी क्षुधा शान्त करने के लिये जाटों के कैम्प में जा कर भिक्षा माँगते थे जो जाटों के सम्मुख नगर निवासियों का प्रत्यक्ष आत्म-समर्पण था। अत: रुहेले सैनिकों का भूखों मरने की अपेक्षा युद्ध में काम आना अधिक वांच्छनीय था। इसलिए रुहेले सरदारों ने जाटों पर आक्रमण करने व अपने हाथ में तलवार लेकर मरने की इजाज़त नजीब से मांगी। परन्तु वह दृढ़तापूर्वक डटा रहा, क्योंकि उसे विदित था कि दिल्ली के अन्दर जवाहर के उतने शत्रु नहीं हैं, जितने कि उसके अपने डेरे में। मल्हारराव और इमाद-उल-मुल्क दोनों ही मिल कर नजीबुद्दौला से गुप्त पत्र व्यहार कर रहे थे।[2]

उधर सिक्खों को समाचार मिले कि अहमदशाह अब्दाली सिन्धु नदी को पार कर चुका है और अपनी सेना सहित लाहौर की तरफ बढ़ने वाला है। तब तो अपने पंजाब प्रदेश की रक्षार्थ जवाहरसिंह को बिना बताये ही सारे सिक्ख सैनिकों ने एकाएक वहाँ से पंजाब के लिये कूच कर दिया। जवाहर के विरोधी सरदार, जो अनिच्छापूर्वक ही युद्ध में सम्मिलित हुए थे, नहीं चाहते थे कि जवाहर को सफलता मिले।[3] जवाहरसिंह ने यह भी अनुभव किया कि मल्हारराव होल्कर और इमाद-उल-मुल्क की बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। जवाहर की अपनी जाट सेना में भी शिथिलता आने लगी थी, जिससे जवाहरसिंह का भी साहस कम हो गया।[4]

इसी समय फरवरी ४, १७६५ ई० को नजीबुद्दौला ने सुजान मिश्र, राजा चेतराम और तेजराम कोठारी को मल्हारराव होल्कर के पास भेजा। तब फरवरी ६, १७६५ ई० को उक्त तीनों मल्हारराव के पास पहुँचे और सूर्यास्त के दो घन्टे पूर्व वापस

---

१. बिहारी० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५६।
२. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ९०; दि० क्रा०, पृ० १३१; फाल० २, पृ० ३४१; जाट्स० पृ० १७६।
३. शाकीर०, पृ० १०५; फाल० २, पृ० ३४१; गुप्त०, पृ० २१०।
४. नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ९३–९५।

लौट आये। जावित खां ने जमुना को पार किया और गंगाधर तांतियां व रूपराम कोठारी को अपने साथ लेकर वह नजीबुद्दौला के पास गया।[1] तब दोनों में संधि हो गई।[2] फरवरी ६, १७६५ ई० को नजीबुद्दौला अपनी सेना व अब्दुल अहमद खां, याकूबअली खां व अन्य सरदारों के साथ मल्हारराव के डेरे पर गया और तद्नन्तर मल्हारराव होल्कर के साथ दिल्ली के निकट शाहदरा के बाहर वह जवाहरसिंह से मिला। यो जवाहरसिंह के साथ मेल करके सूर्यास्त के पूर्व ही नजीबुद्दौला वापस दिल्ली लौट आया और साथ में भारी मात्रा में खाद्यान्न भी लेता आया।[3]

अब जवाहरसिंह दिल्ली का घेरा उठा कर फरवरी १२, १७६५ ई० को अपनी समस्त सेना के साथ दिल्ली के दक्षिण में स्थित ओखला के लिए रवाना हुआ। फरवरी १५, १७६५ ई० को मल्हारराव होल्कर नजीबुद्दौला से मिला तब वहां उसे एक हाथी, दो घोड़े, जवाहरात से भरी नौ तस्तरियां भेंट की गईं और १२० खिलअतें उसके साथियों के लिए प्रदान की। फरवरी १६, १७६५ ई० को जावित खां ने जवाहरसिंह से भेंट की और उसे मुगल शाहजादे की तरफ से एक हाथी, घोड़ा और खिलअत भेंट की।[4]

इस प्रकार दिल्ली की दीवारों के सामने फरवरी १६, १७६५ ई० को जवाहरसिंह कोई एक करोड़ साठ लाख रुपये बरबाद करने के बाद वहाँ से चल दिया और इसके बदले में उसे सिवाय पश्चाताप के कुछ भी हाथ नहीं लगा।[5] यद्यपि नजीबुद्दौला के विरुद्ध इस युद्ध में वह सफलता की चरम सीमा पर पहुँच गया था, लेकिन मल्हारराव की अत्यधिक सुस्ती व प्रत्यक्ष रूप से नजीबुद्दौला का पक्ष लेने के कारण ने उसका सारा बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। यों विवश होकर नजीबुद्दौला

---

१. दि० क्रा०, पृ० १३१।

२. संधि की शर्तों के बारे में किसी भी समकालीन और बाद के प्रामाणिक ऐतिहासिक आधार ग्रंथों में वर्णन नहीं मिलता।

३. बिहारी० इस्लामिक०, १०, पृ० ६५७; दि० क्रा०, पृ० १३२; होल्कर०, १, प० सं० २२५; जाट्स०, पृ० १७८।

४. दि० क्रा०, पृ० १३२; जाट्स०, पृ० १७८।

५. वेण्डल०, पृ ६८।

के साथ की गई, इस संधि से जवाहर को यत्किंचित भी संतोष नहीं था। विश्वास-घाती मल्हारराव होल्कर के दबाव से ही बाध्य होकर, उसे यह संधि करनी पड़ी थी। अतः संधि होते ही वह दिल्ली छोड़ कर चला गया। शिष्टता के नाते उसे वापसी भेंट के लिये नजीबुद्दौला के यहाँ जाना चाहिये था, किन्तु उसने इसकी परवाह नहीं की और सीधा डीग के लिए रवाना हो गया।[1]

---

१. वैण्डल०, पृ० ६८; नूरुद्दीन० रशीद०, पृ० ६७–६८; हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६४; जाट्स०, पृ० १७६।

५ आन्तरिक विरोधियों का दमन

(१) विद्रोही जाट सरदारों का दमन :

नजीबुद्दौला के विरुद्ध दिल्ली के युद्ध में इस प्रकार अत्यधिक धन की हानि उठा कर जब जवाहरसिंह मार्च, १७६५ ई० के प्रारम्भ में डीग (भरतपुर) पहुँचा, तब वह मन ही मन में बहुत ही क्रुद्ध और अशान्त था। उसे विश्वासघाती इमाद-उल-मुल्क एवं मल्हारराव से घृणा हो गई थी। अपने सरदारों के प्रति भी उसे बड़ा क्रोध था। युद्ध के दिनों में मल्हारराव होल्कर और मुख्य सरदारों की असहयोग-पूर्ण नीति के कारण ही उसे अनिच्छापूर्वक संधि करने को बाध्य होना पड़ा था।[1]

धन-सम्पत्ति के इस भयंकर अपव्यय के कारण जवाहरसिंह का राजकोष भी रिक्त हो गया था। उधर विरोधी सरदारों ने उसे सूरजमल के समय का आय-व्यय का ब्यौरा देने से मना कर दिया था, जिससे पुरानी बचत की रकमें भी उसे प्राप्त नहीं हो सकीं। साथ ही भरतपुर दुर्ग में सुरक्षित सूरजमल का गुप्त कोष भी उसकी पहुँच से बाहर ही था।[2] इस समय राज्य की सम्पूर्ण शक्ति और सम्पत्ति पर प्रधान सेनापति बलराम व तोपखानें का सेनापति मोहनराम का एकाधिकार था। सभी उच्च पदों पर उन्होंने अपने सम्बन्धियों को नियुक्त कर रखा था। ये सभी सरदार हृदय से युवक और नये राजा जवाहरसिंह को अपना शासक स्वीकार नहीं करते थे। जवाहरसिंह जो अपने राज्य का पूर्ण स्वामी बनना चाहता था, इन्हें बाधक समझता था, साथ ही उसको विश्वास था कि उनके पास लाखों की सम्पत्ति है। अतः वह इन सोने की चिड़िया को एक ही प्रहार से समाप्त कर देना चाहता था।[3]

---

१. वेण्डल, पृ० ९८, १०२।

२. वेण्डल०, पृ० ९६–९८।

३. वेण्डल०, पृ० १०३; जाट्स०, पृ० १७९–१८०।

इन सरदारों के दमनार्थ सर्व प्रथम राजा जवाहरसिंह ने उमरावगिर, अनूपगिर गुसाईं व उनकी सेना को अपनी सेवा में रख लिया, जिन्हें दिल्ली आक्रमण के समय रुपया देकर बुलाया था।[1] जवाहरसिंह ने जर्मन सेनानायक समरू और उसके आधीन विदेशी सेनानायकों को भी लगभग अप्रेल, १७६५ ई० में अपनी सेवा में रख लिया।[2] तब समरू कुछ समय के लिये जयपुर राजा के पास चला गया था, किन्तु शीघ्र ही वह वापस जवाहरसिंह की सेवा में लौट आया।[3] तत्पश्चात् जवाहरसिंह ने बलराम और मोहनराम की शक्ति को क्षीण करना चाहा, लेकिन् अकारण उन्हें पदयुच्त करना दुरूह अवश्य था। जवाहरसिंह की गुप्त स्वीकृति से इन विदेशी सैनिकों ने प्रधान सेनापति बलराम व तोपखाने का सेनापति मोहनराम का नेतृत्व अस्वीकार कर दिया। इस पर प्रधान सेनापति का पद जवाहरसिंह स्वयं ने सम्भाला और बलराम को घुड़सवार सेना का सेनापति बनाया। मोहनराम को तोपखाने के सेनापति पद से स्थानान्तर कर उसे पैदल सेना का सेनापति बनाया व समरू को तोपखाने का सेनापति नियुक्त किया।[4]

---

१. हरसुखराय (हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६४) के अनुसार ये पहले अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेवा में थे, जब नवाब अंग्रेजों द्वारा पराजित हुआ तब ये नवाब की सेवा छोड़ कर जवाहर की सेवा में उपस्थित हो गये।

२. बेगम०, पृ० ६।

३. एशियाटिक एन्युअल रजिस्टर, १८०० ई. में मिसलेनियस ट्रैक्टस (पृ० २९-३२) के अन्तर्गत प्रकाशित कर्नल आयर्नसाइड के नाम मई २२, १७७६ ई० के दिन दिल्ली से मेजर पोलियट द्वारा लिखे गये पत्र से यह ज्ञात होता है कि जर्मन सेनापति समरू अवध ने नवाब शुजाउद्दौला की सेवा छोड़ करके, जाट राजा की सेवा में उपस्थित हुआ, परन्तु कुछ ही समय बाद वह वहाँ की सेवा छोड़ कर जयपुर राजा के पास चला गया था, किन्तु वह वहाँ अधिक समय तक नहीं ठहरा और जल्दी ही वह पुनः जवाहर के यहाँ सेवा में लौट आया। यद्यपि इसका अन्य किसी समकालीन और बाद के ऐतिहासिक आधार ग्रंथों में उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु यह विवरण जवाहरसिंह की मृत्यु के लगभग आठ वर्ष बाद ही लिखा गया था, एवं वह सत्य प्रतीत होता है और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

४. जाट्स०, पृ० १८०।

इस प्रकार विदेशी सेना के बल पर जवाहरसिंह शक्तिशाली बन गया और इन्हीं के बल पर उसने विरोधी स्वजनों को बन्दी व दमन करने का सोत्साह अभियान प्रारम्भ किया।[1] वह आगरा पहुँचा और वहाँ पर उन सभी सरदारों को उपस्थित होने के लिए आमन्त्रित किया, क्योंकि वहां वह छल करके उन्हें गिरफ्तार करना चाहता था। भरतपुर, डीग, मथुरा, धौलपुर आदि स्थानों से आगरा आने वाले सभी विभिन्न मार्गों पर उसने अपनी पूर्व निश्चित योजना के अनुसार अपनी सारी विदेशी सेना तैनात कर दी। अतः मार्ग में ही भाड़े के इन विदेशी सैनिकों की सहायता से जवाहरसिंह ने बलराम तथा उसके सम्बन्धियों एवं मोहनराम बरसानियाँ को तथा अपने पिता सूरजमल के समय के सारे प्रमुख जाटों को उसी दिन बन्दी बना लिया गया। बलराम और उसके साथ के कुछ अन्य व्यक्ति गिरफ्तार हो जाने से अत्यधिक लज्जित हुए और आगे चल कर अधिक अपमान से बचने के लिए कारागृह में ही उन सब ने आत्म हत्या कर ली। बाकी रहे सभी बन्दियों को सेना के संरक्षण में भरतपुर लाया गया।[2]

वहाँ उनमें से जिन व्यक्तियों ने सूरजमल के समय का शेष हिसाब नहीं दिया था और जिन्हें भ्रष्टाचार का दोषी भी ठहराया जा चुका था। उन्होंने अपना सब कुछ जवाहर को अर्पण करके अपने प्राण बचाये। लेकिन् बहुत से ऐसे भी सरदार थे, जिनके पास अतुल धन-सम्पत्ति थी और जिन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं दी गईं,[3] किन्तु वे प्राण देने को तत्पर हो गये लेकिन् वे एक पैसा भी देने को राजी नहीं हुए। तोपखानें का भूतपूर्व सेनापति मोहनराम ने अनेकानेक बहुमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त ८० लाख रुपये भी संग्रहित कर लिये थे। उसे अनेकानेक प्रकार से कठोर व निर्मम यातनाएं दी गईं जिससे वह और उसका पुत्र कारागृह में ही मर गये। लेकिन् उसने अपनी सम्पत्ति का एक अंश भी जवाहर को नहीं दिया। इसी प्रकार जिन अन्य सरदारों ने भी जवाहरसिंह की मांग पर उसे कोई द्रव्य नहीं दिया, उनकी भी यही दशा की गई।[4]

---

१. वेण्डल०, पृ० १०२।

२. वेण्डल०, पृ० १०२; जाट्स०, पृ० १८०-१८१।

३. वेण्डल०, पृ० १०२।

४. वेण्डल०, पृ० १०३।

तत्पश्चात जवाहरसिंह ने वदनसिंह के पौत्र और प्रतापसिंह के पुत्र बहादुरसिंह का दमन करने के लिये उस पर चढ़ाई की। वैर[1] की जागीर व सुदृढ़ दुर्ग इस समय बहादुरसिंह के अधिकार में था। आर्थिक दृष्टि से वह सम्पन्न था और उसके पास अपनी विशाल सेना थी। सूरजमल की अच्छी सेवा कर अनेक बार उसने पुरस्कार प्राप्त किये थे।[2] सूरजमल की मृत्यु के बाद वह स्वयं को जवाहरसिंह की अपेक्षा अधिक योग्य समझता था तथा वह जवाहरसिंह के आधीन नहीं रहना चाहता था। उसने सुरक्षात्मक साधन बढ़ाना प्रारम्भ कर दिये। अपनी सेना में भी वृद्धि की।[3] अपने कार्यों तथा वर्ताव से जवाहरसिंह को यह बात स्पष्ट कर दी कि वैर पर वह एक स्वतन्त्र शासक की भांति शासन करना चाहता है।[4]

जवाहरसिंह के लिए यह असहनीय था। उसने बहादुरसिंह की इस प्रकार की कार्यवाही को देख कर वर्षा ऋतु के होते हुए भी उसने अविलम्ब अगस्त, १७६५ ई० में अपने स्वामीभक्त विदेशी सैनिकों व विशाल सेना के साथ वैर के दुर्ग पर आक्रमण कर दिया।[5] वर्षा ऋतु के कारण प्रारम्भ में तोपखाना प्रयोग में नहीं लिया जा सका था। तीन महीने तक बहादुरसिंह साहसपूर्वक इस घेरे का सामना करता रहा और जवाहरसिंह की योजनाएं विफल रहीं। तब तो जवाहरसिंह ने फर्रूखनगर पर अधिकार करने की अपने पिता की छलपूर्ण चालों को अपनाया। एक ओर उसने बहादुरसिंह के पास संधि का झूठा प्रस्ताव भेजा, तो दूसरी ओर उसके कुछ प्रमुख सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया।[6] बहादुरसिंह के उन विश्वासघाती सरदारों की सहायता से जवाहर ने दुर्ग पर अचानक आक्रमण कर उसे बन्दी बना लिया। वैर के दुर्ग पर अधिकार कर जवाहरसिंह ने अपने एक विश्वास पात्र सरदार को वहां का किलेदार नियुक्त कर दिया। वैर के जागीरदार बहादुरसिंह को बन्दी बना कर जवाहरसिंह उसे नवम्बर, १७६५ ई० में डीग ले आया और वहां के कारागृह में उसे डाल दिया गया।[7] अप्रेल, १७६६ ई० में जब जवाहरसिंह के भाई रतनसिंह के पुत्र का जन्म

---

१. वैर बयाना से १२ मील उत्तर–पश्चिम में स्थित है और तब भी भरतपुर राज्य के आधीन था।
२. वैण्डल०, पृ० १०३।
३. जाट्स०, पृ० १८३।
४. वैण्डल०, पृ० १०४।
५. वैण्डल०, पृ० १०४; पे० द०, २६, प० सं० १६५।
६. वैण्डल०, १०४।
७. फाल०, २, पृ० ३४३।

हुआ, तब उसकी खुशी में फर्रुखनगर के नवाब मुसावी खां के साथ बहादुरसिंह को भी मुक्त किया गया और तब बहादुरसिंह को वैर के कुछ परगने जागीर में दे दिये गये।[1]

इस अभियान से भी जवाहरसिंह को अंततः हानि ही पहुँची थी। वैर दुर्ग से जो धन प्राप्त हुआ, उसके अतिरिक्त और भी ३० लाख रुपये व्यय करने पड़े। वर्षा के कारण कई सैनिक बीमारी व मृत्यु के ग्रास हुए। उसकी बहुत सी तोपें बाण गंगा की दलदल में फंसी रह गईं। सैकड़ों मन बारूद खराब हो गया।[2]

जवाहरसिंह के इन कार्यों से जाति के मुखिया व्यक्ति व सम्बन्धी भयभीत हो गये और उसके प्रति उनमें द्वेष फैल गया। उन सब ने उसका साथ छोड़ दिया। राज्य तथा सेना में स्वामिभक्त जाट सेवकों का एकदम अभाव हो गया। नजीबुद्दौला के विरुद्ध युद्ध में उसकी बड़ी हानि हुई थी। अतः जिन-जिन व्यक्तियों से वह असन्तुष्ट था उन सब का वह धन हरण करने लगा कि इस हानि की पूर्ति की जा सके, किन्तु इस प्रकार भी उसे केवल १५–२० लाख रुपये ही मिल पाये। अतः उसके अनुचित कार्य तथा ये राजनैतिक भूलें ही जवाहरसिंह के बाद जाट राज्य के विघटन के मूल कारण बने।[3] यह कहा जा सकता है कि उसने ऐसा कदम विशेष कठिनाई पूर्ण परिस्थितियों के कारण ही उठाया। इस समय राज्य की शक्ति पर बलराम व मोहनराम का एकाधिकार था। ये व उनके साथी नाहरसिंह के समर्थक थे। नाहरसिंह धौलपुर में बैठा हुआ, पुनः गद्दी प्राप्ति की चेष्ठा में लगा हुआ था और तदर्थ मराठों से भी वह बातचीत कर रहा था। मराठे भी जवाहरसिंह से असन्तुष्ट हो चुके थे। वैर का जागीरदार बहादुरसिंह स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित करने वाला था। ऐसी परिस्थिति में जवाहरसिंह के विरुद्ध उसके विरोधी सरदारों, वैर के बहादुरसिंह, नाहरसिंह और मराठों का एक गुट बनने की बहुत घातक सम्भावना थी। इनकी सम्मिलित सेना का सामना करना जवाहरसिंह के लिए दुरूह अवश्य हो जाता और तब सम्भवतः उसे राजगद्दी से हटना पड़ता। अतः उसने एक-एक कर इन सब ही विरोधियों का सफलतापूर्वक दमन कर अपना मार्ग प्रशस्त कर लिया।

---

१. जाट्स०, पृ० १८३–१८४।
२. दैण्डल०, पृ० १०४; जाट्स, पृ० १८४।
३. दैण्डल०, पृ० १०३; फाल०, २, पृ० ३४३; जाट्स० पृ० १८१–१८२।

(२) नाहरसिंह के साथ अन्तिम संघर्ष और उसकी निर्णायक विफलता :

नाहरसिंह अपने पिता सूरजमल का प्रिय पुत्र था। सूरजमल वहुत ही इच्छुक था कि उसके वाद नाहरसिंह ही उसका उत्तराधिकारी हो, एवं सूरजमल की मृत्यु के वाद भरतपुर की गद्दी के लिए वह जवाहरसिंह का प्रतिद्वन्द्वी वना। वह अपने प्रथम प्रयास में असफल हो, पिता के समय प्राप्त अपनी जागीर धौलपुर चला गया था।[1] जिस समय पश्चिम में जवाहरसिंह अपने विरोधी वहादुरसिंह के दमन के लिए घेरा डाले हुए था, उसी समय नाहरसिंह ने पुनः गद्दी प्राप्ति के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये।[2] नाहरसिंह ने अनुभव किया कि अब जवाहर की शक्ति पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है और वहादुरसिंह के वाद जवाहरसिंह उसी पर प्रहार करेगा। इसलिए वह स्वयं प्रथम प्रहार करना चाहता था। धौलपुर में उसने किले वन्दी प्रारम्भ की और अपनी सुरक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ किया। साथ ही मल्हारराव होल्कर की सहायता प्राप्त की जो उस समय गोहद के राणा के साथ संघर्ष कर रहा था।[3]

नाहरसिंह के विशेष अनुनय-विनय पर मल्हारराव होल्कर भी जवाहरसिंह के विरुद्ध उसकी सहायता करने को राजी हो गया,[4] क्योंकि दिल्ली की चढ़ाई के पश्चात् मल्हारराव होल्कर जवाहरसिंह से नाराज हो गया था। नजीवुद्दौला के विरुद्ध दिल्ली पर चढ़ाई के समय जवाहरसिंह ने उसकी सैनिक सहायता के बदले मल्हारराव होल्कर को २५ लाख रुपये देने का वादा किया था। तब उनमें से केवल दस लाख रुपये ही मल्हारराव होल्कर को दिये गये थे। वाकी रहे १५ लाख रुपये होल्कर को तब नहीं दिये गये थे[5] और तदनन्तर जवाहरसिंह ने उस पर विश्वास-घात का आरोप लगा कर यह वाकी रकम उसे देने से इन्कार कर दिया।[6] जब मराठों ने देखा कि जाट राज्य में जवाहरसिंह व नाहरसिंह के बीच राज्याधिकार के

---

१. जाट्स०, पृ० १७२।
२. वैण्डल०, पृ० १०५; जाट्स०, पृ० १८५।
३. वैण्डल०, पृ० १०५।
४. पे० द०, २६, प० सं० १०२; जाट्स०, पृ० १८५।
५. वैण्डल, पृ० १०५; पे० द०, २६, पं० सं० ११७; फाल०, २, पृ० ३४४।
६. जाट्स०, पृ० १८६।

लिए पुनः संघर्ष होने वाला है तो वे नाहरसिंह के हितैषी बन गये, क्योंकि नाहरसिंह अब उनके लिए धन प्राप्ति का साधन था। मराठों के अनुसार धन प्राप्ति के लिए जाटों का प्रदेश सर्वथा अनुपम और अद्वितीय था।[1]

मल्हारराव होल्कर की ही प्रेरणा से उसने जवाहर के विरुद्ध भरतपुर की राज गद्दी के लिए दावा प्रस्तुत किया। मराठों के डेरे में बैठे हुए नाहरसिंह ने गुप्त रूप से अपने समर्थक सरदारों व जवाहरसिंह के राज्य के सब ही धोखेबाज व्यक्तियों के साथ पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क साधा और उन्हें कहा गया कि जवाहरसिंह की जननी हीन कुल की थी, जबकि नाहरसिंह पूर्णरूपेण सूरजमल का औरस उत्तराधिकारी है और इसीलिए वह जाट जाति का मुखिया है। इस पत्र का सरदारों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। पुनः वे सब जवाहरसिंह के स्वभाव से भयभीत रहते थे और उनमें इतना साहस भी नहीं था कि वे जवाहर का विरोध कर सकें।[2]

अब भरतपुर के आन्तरिक विवादों में हस्तक्षेप का स्वर्ण अवसर देख मल्हारराव ने नाहरसिंह को अपना धर्म पुत्र बना लिया, जो इससे पहले नजीबुद्दौला को भी इसी प्रकार अपना धर्म पुत्र बना चुका था। यह दिखाने के लिए कि कानूनन् नाहरसिंह का साथ दे रहा है।[3] उसने सुलतानजी लम्भाटे, मकाजी लम्भाटे और सन्ताजी बावले के सेनानायकत्व में १५ हजार घुड़सवार चम्बल पार भेजे।[4] मराठा घुड़सवारों ने धौलपुर से डीग और आगरा तक के जाटों के गांवों को लूट लिया।[5] मल्हारराव होल्कर यों जवाहर पर दबाव डाल कर जवाहर से दिल्ली के युद्ध के समय की बाकी रही रकम भी प्राप्त करना चाहता था। किन्तु जवाहर कोई साधु सन्त तो था नहीं जो इस कार्यवाही से भयभीत हो जावे व ऐसी धमकी से डर जावे।[6]

वह उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में रहा। उसने पंजाब से सात हजार सिक्खों को बुलवा भेजा और उन्हें वेतन पर अपनी सेना में रख लिया। शीघ्र ही अवसर देख कर अपनी इस सिक्ख सेना व अन्य सेना के साथ नाहरसिंह और मराठों का

---

१. पे० द०, २९, प० सं० ११७, १७७।
२. फाल०, २, पृ० ३४४–३४५।
३. जाट्स०, पृ० १८६।
४. हैण्डल०, पृ० १०५।
५. फाल०, २, पृ० ३४५।
६. हैण्डल०, पृ० १०५।

सामना कर उनके प्रयत्नों को विफल करने के लिये भरतपुर से कूच किया। धौलपुर से चौदह मील की दूरी पर उसने मल्हारराव होल्कर की सेना का मार्च १३ और १४, १७६६ ई० को सामना किया।[1] कुशल रणनीति को अपना कर जवाहरसिंह ने सिक्खों के एक छोटे दल को मराठा सेना पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ाया, जो शत्रु सेना के सामने नहीं ठहर सका और विवश होकर पीछे हटने लगा, तब उल्लसित मराठों ने यह समझ कर उनका पीछा किया कि शत्रु पराजित हो भाग रहे हैं। इस प्रकार वे जवाहर के विरुद्ध अग्र युद्ध पंक्ति के निकट आ गये। जाट सेना वन्दूकों आदि से पूरी तरह से सुसज्जित थी, एवं मराठों को सामने आते देख कर जाटों और सिक्खों की सेनाएं साथ-साथ आगे बढ़ीं तथा वे वन्दूकें और तोपें चलाने लगे।[2] यह युद्ध संध्या तक चलता रहा और जब मराठा सेना वापस लौटने लगी, तब जाट घुड़सवारों ने उन पर घोड़े दौड़ा दिये। इससे मराठों की सेना में भगदड़ मच गई तथा सैंकड़ों मराठे सैनिक मारे गये व घायल हुए और शेष सब भाग निकले। बड़ी तेजी से भागते हुए इन मराठा घुड़सवारों में से अनेकों चम्बल तट के खड्डों और ऊबड़-खाबड़ घाटियों में गिर पड़े, जिन्हें वन्दी वना लिया गया।[3] तत्पश्चात् उनका पीछा करता हुआ जवाहार तत्परता के साथ धौलपुर पहुँचा और उसे घेर लिया। कुछ ही समय में उसने धौलपुर पर अधिकार कर लिया और सुल्तानजी लम्भाटे तथा उसके अन्य मराठा सेनानायकों को कैद कर लिया।[4]

जवाहरसिंह के संभावित आक्रमण आदि से भयभीत होकर नाहरसिंह ने सन् १७६५ ई० के अन्तिम महीनों में ही अपने परिवार तथा कुटुम्ब को जगन्नाथ राव के साथ जयपुर के महाराजा माधोसिंह की शरण में भेज दिया।[5] तदनन्तर मराठा सेना के साथ शेरगढ़ के किले से बाहर निकल कर वह भी चम्बल पार चला गया। इस प्रकार नाहरसिंह को अपनी जागीर से हाथ धोना पड़ा। मराठे उसे अपना उपयोगी साधन समझते थे। जब उन्हें उसकी आवश्यकता नहीं रही तो उन्होंने उसकी पूर्ण उपेक्षा की। तब उसने जयपुर राज्य में शरण ली और अपने अन्तिम दिन

---

१. फाल०, २, पृ० ३४५।
२. वैण्डल०, पृ० १०५; चन्द्रचूड़०, १, प० सं० १०२।
३. जाट्स० पृ० १८६।
४. पे० द० (नई), ३, प० सं० ८५; चन्द्रचूड़०, १, प० सं० १०२; जाट्स०, पृ० १८६।
५. पे० द०, २६, प० सं० १०२।

उसने शाहपुरा-मनोहरपुर के ठाकुर के संरक्षण में विताये । अपनी निस्सहाय निराशा-पूर्ण स्थिति से खेद-खिन्न होकर इस सीधे-साधे जाट राजकुमार ने अन्त में विषपान कर दिसम्बर ६, १७६६ ई० के लगभग अपने दुःखपूर्ण विफल जीवन का अन्त कर लिया ।[1]

---

1. बंगाल०, पृ० १०५; पर्शियन०, २, पृ० ६; फाल०, २, पृ० २४६ ।

६ मराठों के साथ सम्बन्ध

(१) जवाहरसिंह और मल्हारराव :

सूरजमल अपने जीवन काल में सदैव मराठों को उत्तरी भारत से निकाल बाहर करने को समुत्सुक रहा, लेकिन् परिस्थितिवश वह उनके विरुद्ध ऐसा कोई कदम नहीं उठा सका था।[1] उसका पुत्र जवाहर राज्यारोहण के बाद से ही अपने पिता की इस इच्छापूर्ति के लिए प्रयत्नशील हुआ। लेकिन नजीबुद्दौला से अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए उसे मल्हारराव होल्कर से सहायता लेनी पड़ी। पिछले अध्याय में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि जवाहर व नजीबुद्दौला के संघर्ष में मल्हारराव होल्कर ने जवाहर को सक्रीय सहयोग नहीं दिया, जिसके फल-स्वरूप जाट राजा को नजीबुद्दौला से समझौता करना पड़ा। जवाहर ने मल्हारराव होल्कर को अपने वादे के अनुसार पूर्ण रकम अदा नहीं की, क्योंकि मल्हारराव ने उसके साथ विश्वासघात किया था। इस पर मल्हार ने नाहरसिंह का समर्थन किया। जवाहर ने सिक्खों की सहायता से मल्हारराव के सेनानायकों को धौलपुर के संघर्ष में परास्त किया।

अब गोहद का जाट राणा भी अपनी सेना लेकर जवाहर के साथ आ मिला। दोनों ने मिल कर मल्हारराव होल्कर के विरुद्ध युद्ध करने की योजना बनायी तथा उत्तर मालवा में मराठों के क्षेत्रों तक लूटमार करना प्रारम्भ किया,[2] तो तब शीघ्र ही वापस अपने राज्य को लौट जाना पड़ा, क्योंकि जवाहर की सहायतार्थ आये सिक्ख सवारों ने उसके साथ आगे जाने से इन्कार कर दिया। इस तृण रहित और जलहीन मैदान की गर्मी उनके लिए असह्य थी। अतः विवश होकर जवाहर को

---

१. ता० आ०, प० ८२ ब-८४ अ; फाल०, २, पृ० ६०, गण्डा०, पृ० १७२।
२. फाल०, २, पृ० ३४५।

मल्हारराव होल्कर के विरुद्ध अपनी युद्ध योजना स्थगित कर देनी पड़ी। इस प्रकार सिक्खों ने मल्हारराव होल्कर को इस विपत्ति व पराजय से बचा लिया।[1]

(२) जवाहरसिंह और रघुनाथराव :

जाटों के इस मराठा विरोधी संघ ने पेशवा को भयभीत कर दिया। उसने दक्षिण में रघुनाथराव को ६० हजार घुड़सवार और १०० तोपें देकर, कोल्हापुर से उत्तर मालवा में गोहद के जाट राणा के विरुद्ध भेजा। जानोजी भौंसले को अपने साथ लेकर रघुनाथराव झांसी पहुँचा। भाण्डेर के पास (अप्रेल २४) मल्हारराव होल्कर और महादजी सिंधिया भी उससे आ मिले। जिस समय गोहद को जीतने की योजना बनाई जा रही थी, तब बीमरी से जर्जरित वृद्ध मल्हारराव होल्कर का मई २६, १७६६ ई० को देहान्त हो गया।[2]

रघुनाथराव ने गोहद को घेर लिया। गोहद के जाट राणा छत्रसाल को जवाहरसिंह का शक्तिशाली समर्थन प्राप्त था, अतः उसने दृढ़ता के साथ रघुनाथराव का सामना किया। उधर महादजी सिंधिया भी रघुनाथराव के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर उसका विरोधी हो गया था। अतः अन्य युद्धों की भांति गोहद के विरुद्ध रघुनाथराव की यह चढ़ाई भी असफल रही।[3] रघुनाथराव कई महीने तक गोहद को घेरे रहा। इसी समय रघुनाथराव ने जवाहर से भी धन की मांग की और आक्रमण का भय दिखाया।[4] जवाहरसिंह मल्हारराव होल्कर के विरुद्ध विजयी हो चुका था। अतः उसने यह निश्चय कर लिया था कि मराठों के इस आक्रमण को दूर करने के लिए उसे स्वयं गोहद की सहायता करनी चाहिये और मराठों को चम्बल पार नहीं करने देना चाहिये।[5]

लेकिन इच्छा होते हुए भी वह गोहद के राणा की सहायता नहीं कर पाया, क्योंकि उस समय वह एक भयंकर रोग से पीड़ित था। साथ ही मराठों का पूर्णरूपेण दमन करने के लिये वह एक लम्बी-चौड़ी योजना बनाने में उलझ गया। तदर्थ उसने नजीबुद्दौला के पास बहादुरसिंह और दिलेरसिंह को मराठा विरोधी संगठन

---

१. हैण्डल०, पृ० १०५।
२. हैण्डल०, पृ० १०६; दि० फा०, पृ० १३५; जाट्स०, पृ० १८६।
३. पर्शियन०, १, पृ० ७; पे० द०, २६, प० सं० ११७; फाल०, २, पृ० ३४६।
४. हरनुल० ईलियट०, ८, पृ० ३६४।
५. हैण्डल०, पृ० १०६; फाल०, २, पृ० ३४६।

बनाने के लिए भेजा।[१] दूसरी ओर उसने मराठों से भी शान्ति वार्ता जारी रखी। उसने अपने एक दूत, मोहकमसिंह को पेशवा के पास संधि वार्ता के लिए भेजा, लेकिन मोहकमसिंह को विफल मनोरथ होकर ही वापस लौटना पड़ा, क्योंकि मराठे युद्ध के पक्ष में ही थे और बड़ी मात्रा में धन देकर भी उनके साथ संधि की कोई सम्भावना नहीं थी। अतः अपने रोग से मुक्ति प्राप्त करने पर जवाहरसिंह ने डीग और कुम्हेर का राज्य प्रबन्ध अपने छोटे भाई रतनसिंह को सौंपा और वह स्वयं ३० हजार से भी अधिक पैदल और घुड़सवारों की सेना के साथ दीपावली के बाद नवम्बर २, १७६६ ई० को धौलपुर की ओर रवाना हुआ। उसने यह निश्चय कर लिया था कि यदि रघुनाथराव अपनी अनुचित मांगों पर दृढ़ रहता है तो दृढ़ता के साथ युद्ध क्षेत्र में उसका मुकाबला किया जायगा। नवम्बर ११, १७६६ ई० को धौलपुर पहुँच कर उसने वहाँ के बाग में अपना सैनिक डेरा लगाया।[२]

धौलपुर से जवाहरसिंह ने अपने वकील मानसिंह के द्वारा रघुनाथराव के पास यह संदेश भेजा कि गोहद का राणा छत्रसाल उसका मित्र है, अतः वह उसे परेशान न करे। साथ ही उसके (जवाहर) के प्रति जो उनके विचार हैं, वह उसे बताये। चतुर रघुनाथराव ने तब जवाहरसिंह रूपी इस संकट को टालना चाहा, क्योंकि इस समय वह गोहद के राणा के साथ संघर्ष में रत था, जिसमें भी उसे सफलता नहीं प्राप्त हो रही थी। गोहद के राणा से निपट लेने के बाद ही वह जवाहरसिंह के साथ संघर्ष का सोच सकता था। अतः उसने जवाहरसिंह के दूत को सहानुभूतिपूर्ण उत्तर दिया कि उसके स्वामी के प्रति वह मैत्रीपूर्ण विचार रखता है। जवाहरसिंह को प्रसन्न रखने के लिये ही उसने गोहद के राणा को माफ कर दिया। तदनन्तर रघुनाथराव ने गोहद क मामले में अधिक उलझना ठीक नहीं समझा और दिसम्बर, १७६६ ई० के प्रारम्भिक दिनों में वह गोहद का घेरा उठा कर, जवाहरसिंह का सामना करने के लिए चम्बल की ओर बढ़ा। तब जवाहरसिंह को रघुनाथराव से युद्ध करने की अपेक्षा, उससे समझौता कर लेना ही अधिक उचित और आवश्यक जान पड़ा।[3]

(३) अब्दाली की पंजाब पर चढ़ाईयाँ और जाट-मराठा संधि :

इस समय जवाहरसिंह पार्वती नाले के पास पड़ाव डाले हुए था एवं दिसम्बर ८,

---

१. पर्शियन०, १, पृ० ६।

२. पर्शियन०, १, पृ० ७; फाल०, २, पृ० ३४६।

३. पर्शियन०, १, पृ० ७-८; फाल०, २, पृ० ३४६।

१७६६ ई० के दिन वह धौलपुर आ पहुँचा।[1] दोनों ही पक्ष इस समय अनावश्यक आपसी समझौते अथवा संधि के लिये समुत्सुक हो गये थे, जिसका एक विशेष कारण था। अहमदशाह अब्दाली ने अनेक बार पंजाब पर चढ़ाई कर सिक्खों का दमन किया था, किन्तु प्रत्येक बार उसके वापस लौट जाने पर वे पुनः विद्रोह कर स्वतन्त्र हो जाते थे। अतः उन्हें दबाने के लिये भी अब्दाली को बारम्बार पंजाब की ओर आना पड़ता था। इसी हेतु सन् १७६६ ई० के पिछले महीनों में वह पुनः भारत आने का अत्यावश्यक आयोजन कर रहा था। उसके इस सम्भावित आक्रमण सम्बन्धी उड़ती खबरें तब ही से सर्वत्र फैलने लगी थी। पुनः नवम्बर, १७६६ ई० में जब उसने भारत की ओर प्रस्थान किया तब तो जाट और मराठा दोनों ही भयभीत हो उठे, क्योंकि उससे दोनों को ही पूरा खतरा था।

अतः तब रामकृष्ण महन्त और उमरावगिर गुसाईं के द्वारा जवाहरसिंह ने मराठों के साथ संधि की शर्तों के बारे में बातचीत प्रारम्भ की। उसने रामकृष्ण महन्त, उमरावगिर गुसाईं और कुछ अन्य मुख्य सरदारों को रघुनाथराव के डेरे में भेजा, जो चम्बल के किनारे पर चार-पांच दिन तक ठहरे रहे, तब यह समझौता वार्ता चलती रही। दिसम्बर ९–१०, १७६६ ई० को जवाहरसिंह और मराठा सेना-नायक नारोशंकर ने बारी-बारी से एक दूसरे के पड़ाव पर जा कर भेंट की। जवाहर की ओर से हरजी चौधरी और रघुनाथराव की ओर से राव नन्दराम की मध्यस्थता में समझौते की निम्नलिखित शर्तें तय हुईं:—

प्रथम, भरतपुर में बन्दी सब मराठा कैदियों को मुक्त कर दिया जाये।[2]

द्वितीय, जवाहरसिंह के राज्य से लगा हुआ कुछ इलाका जो वस्तुतः मराठों के अधीन था, परन्तु वहां के राजपूत निवासियों से कुछ भी रकम वसूल नहीं हो पाती थी। वह सारा इलाका पूर्णतया जवाहरसिंह को दे दिया जावे तथा उसकी सनदें भी जवाहर को सौंपी जावे और उसके बदले में जवाहरसिंह पांच लाख रुपये मराठों को देवें।

तृतीय, दिल्ली के युद्ध के समय मल्हारराव होल्कर के साथ जो समझौता हुआ, उसमें से बाकी रही १५ लाख रुपये की रकम दे दी जाने पर उस समझौते के

---

1. पर्शियन०, २, पृ० ५–६।
2. इस संधि के अनुसार सुल्तानजी लम्भाटे तथा अन्य सभी कैदी मराठा सरदारों को दिसम्बर १५ के लगभग जवाहरसिंह ने छोड़ दिया।

बदले दी गई सारी रकम की पूरी भरपाई रसीद दे दी जावेगी और तब आगे के लिए नया समझौता लिखा जावेगा ।[1]

संधि के बाद जवाहरसिंह और रघुनाथराव के भेंट की योजना भी बनाई गई, लेकिन अन्त में उनकी भेंट न हो सकी, क्योंकि जवाहरसिंह की सेना में विश्वासघाती भी उपस्थित थे । इसका पता रामकृष्ण महन्त के द्वारा जवाहरसिंह को समय से पूर्व ही लग गया था । महन्त ने जवाहरसिंह को बताया था कि नागा सेनापतियों अनूप-गिर व उमरावगिर गुसाईं को रघुनाथराव ने लालच देकर अपनी ओर मिला लिया था । उन्होंने उससे वादा किया कि उसी के डेरे में उसे वन्दी बना कर वे जवाहरसिंह को उसके हवाले कर देंगे । इसके बदले में रघुनाथराव ने उन गुसाईं सेनानायकों को कालपी की तरफ कुछ परगने जागीर में देने का वादा किया था । यह सब जान कर जवाहरसिंह बहुत क्रोधित हुआ । उसने दिसम्बर २३-२४, की रात्रि में अपनी सेना को तैयार कर गुसाईंयों के डेरे पर अचानक आक्रमण कर उनका सारा पड़ाव लूट लिया ।[2] इस अचानक आक्रमण में असावधान गुसाईंयों के छः सौ आदमी मारे गये, परन्तु उमरावगिर, अनूपगिर और मिरजागिर तीनों तीन सौ सवारों के साथ किसी तरह बच कर निकल भागे और चम्बल पार मराठों के डेरे में जा पहुँचे । उनके १४ सौ घोड़े, ६० हाथी, २०० तोपें व अन्य सारा सैनिक सामान जवाहरसिंह के हाथ लगा ।[3]

जवाहरसिंह ने गुसाईं सेनानायकों के परिवार वालों की, जो भरतपुर, डीग, कुम्हेर तथा आगरा में रहते थे, वहां से ला कर एक ही स्थान पर एकत्र कर स्वयं की निगरानी में रखा । इस लूट में उसे कुल मिला कर कोई ३० लाख का माल प्राप्त हुआ ।[4] गुसाईंयों को शरण देने के बाद भी रघुनाथराव जवाहरसिंह से भेंट के लिए

---

१. पर्शियन०, २, पृ० ५–८; फाल०, २, पृ० ३४५–४६; जाट्स०, पृ० १९०–१९१ ।
२. वैण्डल०, पृ० १०६; हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६४; पर्शियन०, १, पृ० १०; फाल०, २, पृ० ३४६ ।
३. फाल०, २, पृ० ३४६; जाट्स० पृ० १९० ।
४. वैण्डल०, पृ० १०६ । चहार गुलजार–ई–शुजाई के अनुसार उसे २ करोड़ का माल मिला था, किन्तु यह कथन मान्य नहीं किया जा सकता है, क्योंकि समकालीन वैण्डल उस समय स्वयं भरतपुर में उपस्थित था । अतः तत्सम्बन्धी वैण्डल का कथन ही अधिक सत्य और मान्य है । (जाट्स०, पृ० १९० फु० नो०)

उत्सुक था। लेकिन तदर्थ जवाहरसिंह रघुनाथराव के डेरे पर जाने को तैयार नहीं था, क्योंकि उसे आशंका थी कि रघुनाथराव के यहां शरण प्राप्त नागा सवार तब कहीं वहां उस पर अचानक आक्रमण न कर दें। अतः अगले दिन जवाहरसिंह आगरा की ओर रवाना हुआ और रघुनाथराव ने करौली की ओर कूच किया।[1]

(४) जाट-मराठा संघर्ष – जवाहरसिंह की निरन्तर विजय :

अब्दाली के दिल्ली पर सम्भावित आक्रमण से भयभीत होकर की गई यह जाट–मराठा संधि अल्पकालीन युद्ध विराम संधि से अधिक कुछ नहीं थी। इससे जाट–मराठा संघर्ष का अन्त नहीं हुआ। कोई भी पक्ष इस संधि को आवश्यक महत्त्व नहीं दे रहा था। रघुनाथराव अपने साथ की सारी मराठा सेना को लेकर वापस दक्षिण को लौट गया था। इधर अपने राज्य में भी सारे सम्भावित संकट दूर हो गये थे। उसके प्रतिद्वन्द्वी भाई नाहरसिंह का देहान्त हो चुका था और अविश्वसनीय गुसाईं सेनानायकों का भी दमन हो चुका था। अतः जून, १७६७ ई० में जब पंजाब से ही अब्दाली वापस अपने देश को लौट गया, तब जवाहरसिंह ने अपनी मराठा विरोधी युद्ध-योजना कार्यान्वित करना पुनः प्रारम्भ कर दिया।[2]

जून २६, १७६७ ई० तक जवाहर ने बटेसुर, मैडि में अपना थाना बैठा दिया और भदावर क्षेत्र पर भी उसका अधिकार हो गया। तद्नन्तर जून, १७६७ ई० के ही अन्तिम दिनों में ५० हजार सेना व तोपखाने के साथ जवाहर ने सिंध नदी को पार किया और मराठा अधिकार क्षेत्रों में लूटमार तथा उपद्रव करना प्रारम्भ किया।[3] उसने लहार पर अपना थाना बैठा करके १० हजार सेना रामपुरा पर आक्रमण करने के लिये भेजी। जवाहर की इस सेना ने रामपुरा के समस्त क्षेत्र में लूटमार की और वहां की मराठा सेना को पराजित किया। विजयानन्द जाट सेना रामपुरा से आगे बढ़ करके आमान (आमायान) गढ़ी को घेर लिया। आमान गढ़ी का महन्त इस जाट आक्रमण से भयभीत हो गया। वह युक्तिपूर्वक वहां से भाग निकला और इन्दुरखी के गौड़ राजपूत राजा की शरण में चला गया। अपने पूर्ववत् कार्यक्रम के अनुसार जाट सेना ने आमान के आस-पास भी लूटमार प्रारम्भ कर दी, जिससे भयभीत होकर आस-पास के व्यक्ति गांव छोड़ कर भाग गये।[4]

---

१. पर्शियन०, १, पृ० १०; पर्शियन०, २, पृ० ७; फाल०, २, पृ० ३४७।
२. जाट्स०, पृ० १६१-१६२।
३. डेलकर० पृ० ३५८, प० सं० २१; पे० द० (नई), ३, प० सं० ११४।
४. पे० द० (नई), ३, प० सं० ११४, ११५, ११६, ११८।

इन विजयों से युवक राजा का उत्साह अत्यधिक वढ़ गया। अतः उसने भारी वर्षा के दिनों (जुलाई ११, १७६७ ई०) में ही भिण्ड और अटेर[१] पर आक्रमण करके उन्हें भी अपने अधिकार में कर लिया। ये राज्य अभी तक मराठों को खण्डनी (राज्य कर) दिया करते थे। अब इन्होंने खण्डनी जवाहरसिंह को देना स्वीकार किया।[२] भिण्ड और अटेर के राजाओं ने निर्विरोध उसकी आधीनता स्वीकार करली, तब जवाहर का उत्साह और अधिक वढ़ गया। अब वह वड़ी तेजी से अन्य क्षेत्रों पर भी अधिकार करने के लिये मुरावली होता हुआ समथर की ओर जाने वाला था, लेकिन इसी समय उसे समाचार मिले कि रामपुरा वालों ने विद्रोह कर दिया है, तब अपनी पूर्व योजना को स्थगित करके जवाहर परावरा गांव के मार्ग से जुलाई १३, १७६७ ई० को रामपुरा की ओर गया।[३] रामपुरा को घेर लिया गया। कुछ समय के वाद ही रामपुरा वाले जाटों की आधीनता स्वीकार करने को राजी हो गये।[४]

तव जवाहरसिंह ससैन्य कालपी क्षेत्र की ओर वढ़ा। वहाँ का मुख्य मराठा अधिकारी वालाजी गोविन्द खैर चाहता था कि जाट उसके क्षेत्र में उपद्रव व लूटमार नहीं करें, अतः उसने पहले ही कृष्णाजी पंत को जवाहरसिंह के पास भेज कर, उसे तीन लाख रुपये देने का वादा किया। परन्तु जवाहरसिंह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। इस समय वालाजी गोविन्द खैर और उनके साथी जालौन से कोई आठ मील उत्तर में स्थित सारावन गढ़ी में थे। एवं जवाहर ने एक सैनिक दल भेज कर कूँच पर अधिकार कर लिया। उधर जवाहरसिंह ने स्वयं ससैन्य वालाजी गोविन्द आदि पर जुलाई १६, १७६७ ई० में हमला किया। सारे मराठा सरदार वहाँ से भाग गये। उनके बाल-वच्चे रायपुर (जालौन) में थे, अतः उन्हें भी अपने साथ लेकर, वे सब वेतवा नदी को पार कर, अपने एक मित्र वुन्देलखण्ड के राजा के पास चले गये। जवाहरसिंह तब कुछ समय तक जालौन के आस-पास ही ठहर कर सारे क्षेत्र पर अपना आदिपत्य स्थापित करने में लगा रहा।[५]

---

१. अटेर ग्वालियर से ६० मील उत्तर-पूर्व में और गोहद के ठीक उत्तर में स्थित है। भिण्ड अटेर के दक्षिण-पूर्व में उसके पास ही है।

२. वैण्डल०, पृ० १०६; पे० द० (नई), ३, प० सं० ११५, ११६; फाल०, २, पृ० ३४७; जाट्स०, पृ० १९१।

३. पे० द० (नई), ३, प० सं० ११८, ११६, १२१, १२४।

४. पे० द० (नई), ३, प० सं० १२५, १२८।

५. पे० द० (नई), ३, प० सं० १२०, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८; पे० द०, २६, प० सं० १४६; चन्द्रचूड़०, १, प० सं० १५६।

यों कालपी के सारे क्षेत्र को अपने अधिकार में लेने के बाद जवाहरसिंह कूंच गया और जुलाई २६, १७६७ ई० को वहां से समथर पहुँचा। समथर के गुजर राजा ने सहज ही जवाहरसिंह की अधीनता स्वीकार करली और उसे २०-२५ हजार रुपये देने का वादा किया।[1] जवाहरसिंह ने दतिया के राजा से भी कर वसूल किया और तद्नन्तर अगस्त, १७६७ ई० के प्रथम सप्ताह के लगभग वह नरवर की ओर चल पड़ा।[2] इस प्रकार इन कुछ ही महीनों में मराठा संवाददाता के शब्दों में "कालपी प्रान्त, कछावाधार, भदावर, तंवरधार, सिकरवार, डंड्रोली, खितोली आदि क्षेत्रों में सब ही स्थानों पर जाट (जवाहरसिंह) का आधिपत्य हो गया। ......केवल ग्वालियर और झांसी ही हमारे (मराठों के) अधिकार में रह गये हैं।"[3]

जाट सेना ने नरवर के घाट पर शुक्रवार, अगस्त १४, १७६७ ई० को नदी पार करना प्रारम्भ किया, तब राघोगढ़ (बजरंगगढ़) के खीची राजा का आग्रहपूर्ण आमन्त्रण जवाहरसिंह को मिला कि वह उसकी सहायता कर उसके राज्य को मराठों के आधिपत्य से दूर कर देवें। किन्तु जवाहरसिंह ने इसे अमान्य कर दिया और वह नरवर से ही उत्तर की ओर लौट पड़ा।[4] उधर राह में उसने गोविन्द सभाराम पर दबाव डाल कर उसने जिगनी का मराठा थाना जीत लिया। फिर गोहद और पछोर के राजा भी उसके साथ आ मिले। गोहद के राणा ने उस से प्रार्थना की कि मराठों ने उसके थानों पर अधिकार कर लिया। अतः उसकी सहायता की जावे। जवाहरसिंह ने उन्हें वचन दिया कि यदि दशहरा के बाद दक्षिण से मराठों की सहायता के लिए कोई बड़ी सेना नही आयी तो तद्नन्तर वह उनके राज्यों को मराठों के अधिकार से छीन कर उन्हें वापस दिला देगा।[5]

जवाहरसिंह की इन निरन्तर विजयों ने पूना में पेशवा के सम्मुख यह समस्या उत्पन्न कर दी थी कि यदि उत्तर में मराठा शक्ति को बनाए रखना चाहता हो

---

१. पे० द० (नई), ३, प० सं० १३०, १३१।
२. पे० द० (नई), ३, प० सं० १३२, १३३; पे० द०, २९, प० सं० १५२, २१५; चन्द्रचूड़०, १, प० सं० १५६।
३. फाल०, २, पृ० ३४७-३४८।
४. पे० द० (नई), ३, पं० सं० १३२, १३३; पे० द०, २९, प० सं० १५२, २१५; चन्द्रचूड़०, १ प० सं० १५६; फाल०, २, पृ० ३४७-३४८।
५. चन्द्रचूड़०, १, प० सं० १५६; फाल०, २, पृ० ३४८।

तो शक्तिशाली जाट नरेश से किसी प्रकार समझौता कर लिया जाय। जवाहरसिंह भी समझौता करने को इच्छुक था। अत: पेशवा के आदेशानुसार सितम्बर १७६७ ई० के प्रारम्भ में मराठा अधिकारियों ने जवाहरसिंह से संधि करली और साथ ही उक्त संधि की शर्तों के अनुसार विट्ठलराव के आधीन जिगनी और जतलवार परगनें तथा महादजी कासी के अधिकार वाले तवरधार और सिकरवार क्षेत्र जवाहरसिंह को सौंप दिये गये। यह समझौता हो जाने के बाद जवाहरसिंह चम्बल पार कर वापस भरतपुर लौट गया और तदनन्तर मराठों को उत्तरी भारत से बाहर निकालने की योजना में लग गया।[1]

---

१. पे० द० (नई), ३, प० सं० १३४; देसाई०, २, पृ० ५०६।

७ जवाहरसिंह और अँग्रेज

(१) बंगाल में अंग्रेजों का उत्थान :

ईसा की १८वीं सदी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण और बंगाल में अँग्रेजों का कोई विशेष राजनैतिक महत्त्व नहीं था। अन्य यूरोपीय व्यापारी संगठनों की तरह वे भी मुख्यत: विदेशी व्यापारी संस्थाओं के रूप में ही तब तक जाने जाते थे। परन्तु यूरोपीय युद्धों के फलस्वरूप विभिन्न यूरोपीय देशों की इन व्यापारी संस्थाओं तथा उनके भारतीय उपनिवेशों के अधिकारियों में संघर्ष हुए और यों राजनैतिक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। सन् १७५७ ई० में प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को पराजित कर अँग्रेजों ने मीरजाफर को बंगाल का नवाब बनाया, किन्तु शासन सत्ता तब वस्तुतः अँग्रेजों के हाथ में आ गई थी। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने मीरकासिम को बंगाल का नवाब बनाया, परन्तु वह अँग्रेजों के हाथ की कठपुतली बनने को तैयार नहीं था; अतः अँग्रेज उसके विरोधी हो गये।

अँग्रेजों को दबाने के लिये मीरकासिम ने अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला और दिल्ली से निष्कासित मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय का सहयोग और पूर्ण समर्थन प्राप्त किया। किन्तु अँग्रेजों ने बक्सर के युद्ध में सन् १७६४ ई० में इन तीनों की सम्मिलित सेना को पूर्णतया पराजित कर मुगल सम्राट शाह आलम से बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की और उसके बदले में शाह आलम को इलाहबाद में संरक्षण तथा शुजाउद्दौला को उसका बहुत कुछ राज्य वापस दे कर भविष्य में मैत्रीपूर्ण सहयोग देते रहने का वादा किया। इस प्रकार व्यापार करने वाली एक विदेशी कम्पनी ने भारत के राजनैतिक रंगमंच पर एक प्रबल सत्ता के रूप में प्रवेश कर भारत के उन तीन पूर्वी सूबों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित किया। यों अँग्रेजी व्यापारी कम्पनी का प्रमुख अधिकारी राबर्ट क्लाईव १७६५ ई० के बाद बंगाल का गवर्नर बना।

(२) अहमदशाह अब्दाली का निरन्तर आतंक :

परन्तु बंगाल के नये गवर्नर राबर्ट क्लाईव के लिए भी इस समय शान्तिपूर्वक निष्क्रिय रहना सम्भव नहीं था, क्योंकि बक्सर के युद्ध में पराजित होने के बाद मीरकासिम भाग कर रुहेलखण्ड में जा पहुँचा और वहाँ के रुहेलों के साथ मिल कर अँग्रेजों के विरोध के आयोजन बनाता रहता था। इस कठिनतम कार्य में सहायता प्राप्त करने के लिए मीरकासिम ने अहमदशाह अब्दाली से भी सम्पर्क स्थापित कर उसके पास अपना एक वकील भेजा था। जाट और सिक्खों का दमन करने के लिए भारत पर चढ़ाई करने के वास्ते नजीबुद्दौला भी बारम्बार अहमदशाह अब्दाली को आमन्त्रित कर रहा था। ऐसी परिस्थिति में बंगाल की सरकार को अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण का भय होना स्वाभाविक ही था।[1]

अतः अपने आधिपत्य की सुरक्षा हेतु बंगाल के अँग्रेज गवर्नर के लिए यह अत्यावश्यक हो गया कि वह अब्दाली के विरुद्ध किसी उत्तर भारतीय शक्तिशाली शासक के साथ उपयुक्त समझौता करे। अब्दाली के प्रति रुहेला सरदार नजीबुद्दौला की जातिगत सहानुभूति और स्वार्थ सर्वथा सुस्पष्ट थे। अवध का नवाब शुजाउद्दौला भी वस्तुतः अँग्रेजों का विरोधी ही था, क्योंकि वे उसकी शक्ति के विकास में पूर्ण बाधक थे। मद्रास और बंगाल में अँग्रेजों की शक्ति तथा आधिपत्य की इस आकस्मिक अनपेक्षित वृद्धि से मराठे भी सशंक हो गये थे, क्योंकि यों वे उनके कड़े प्रतिद्वन्द्वी के रूप में उभर रहे थे। इसलिए अँग्रेज सत्ताधिकारी इनमें से किसी पर भी विश्वास और भरोसा नही कर सकते थे। उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण भारत में सुव्यवस्थित राज्य व शक्तिशाली सेना वाले भरतपुर के जाट ही ऐसे थे, जिनके साथ अभिन्न मैत्री स्थापित की जा सकती थी, क्योंकि उनके राज्य एक दूसरे से इतनी अधिक दूरी पर स्थित थे कि उनमें पारस्परिक संघर्ष या विरोध की तब कोई सम्भावना नहीं थी। दोनों ही समान रूप से अहमदशाह को भारत से बाहर रखने व मराठों का दमन करने के इच्छुक थे।[2]

कानूनगो के अनुसार राजा जवाहरसिंह कई दृष्टियों से अँग्रेजों का सहायक हो सकता था। पहला, वह अपने सिक्ख मित्रों की सहायता से अहमदशाह अब्दाली को पंजाब में ही व्यस्त रख सकता था। द्वितीय, यदि आक्रमक अँग्रेजों के विरुद्ध

---

१. जाट्स०, पृ० १९३।
२. जाट्स०, पृ० १९४।

आक्रमण करने की धमकी देते तो, वह (जवाहर) उनकी सेना पर पीछे की ओर से आक्रमण कर सकता था। ऐसी स्थिति में अब्दाली सर्व प्रथम जाटों के किलों पर ही आक्रमण करेगा और यों अँग्रेजों को आक्रमणकारी का सामना करने के लिये सुव्यवस्थित और संगठित होने का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त हो सकता था। तृतीय, वह अँग्रेजों की सहायता से शाह आलम द्वितीय को दिल्ली की गद्दी पर बैठा सकता था। यदि उनका मित्र मुगल साम्राज्य की राजधानी में बादशाह बन जावेगा, तो समस्त साम्राज्य पर उनका प्रभाव स्थापित हो सकता था। यदि बादशाह शाह आलम उनकी संरक्षता छोड़ कर और रुहेलों या मराठों से मिल जावे तो राजा जवाहरसिंह उनके इन विरोधियों के विरुद्ध तत्परता पूर्वक सहायता दे सकेगा। इस प्रकार जाट राजा जवाहरसिंह और अँग्रेजों की संधि होने की अत्यधिक सम्भावना थी और इसी कारण अँग्रेजों ने जवाहरसिंह के मैत्री स्थापित करने के प्रयत्न प्रारम्भ किये।[1]

(३) अँग्रेजों का जवाहरसिंह के साथ मैत्री प्रयत्न :

सर्व प्रथम अगस्त १६, १७६५ ई० को बंगाल के गवर्नर ने जवाहरसिंह को पत्र लिख कर आग्रह किया कि जिस जर्मन केप्टिन समरू को जवाहरसिंह ने आश्रय दिया था, उसे वह अपनी सेवा से मुक्त कर देवें, जिससे कि दोनों सत्ताओं में अभिन्न मैत्री और सुरक्षा संधि स्थापित हो सके।[2] जवाहरसिंह ने इस पत्र पर किंचित मात्र भी ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उसे अपने तोपखाने की सुव्यवस्था के लिए समरू जैसे सुयोग्य यूरोपियन सेनापति की बड़ी आवश्यकता थी। इस समय उसे किसी बाह्य आक्रमण की आशंका भी नहीं थी, अतः उसने अँग्रेजों के प्रारम्भिक प्रयत्नों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, लेकिन् बंगाल का तत्कालीन गवर्नर क्लाईव अहमदशाह अब्दाली और मराठों के विरुद्ध एक सुरक्षात्मक संधि करना चाहता था। उसमें रुहलों और जाटों को भी सम्मिलित करना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने छपरा में अँग्रेज अधिकारियों के एक सम्मेलन में इस बात का आग्रहपूर्ण प्रस्ताव किया, किन्तु बहुमत ने यह सोच कर उसका विरोध किया कि बंगाल सरकार पर यों महान् उत्तरदायित्व आ पड़ेगा।[3]

सन् १७६७ ई० के प्रारम्भ में अहमदशाह अब्दाली ने इस निश्चय के साथ पंजाबपर आक्रमण किया कि वह सिक्खों का पूर्णरूप से दमन करेगा। तत्पश्चात् अंग्रेजों पर आक्रमण कर मीरकासिम को बंगाल की गद्दी पर पुनः बिठायेगा। वह सतलज

---

१. जाट्स०, पृ० १६४-१६५।
२. केलेण्डर०, १, प० सं० २६६४।
३. केलेण्डर०, २, प० सं० २०१, २५५; जाट्स०, पृ० १६५-१६६।

नदी तक वढ आया और दिल्ली पर भी आक्रमण करने की उसने धमकी दी। जिससे सभी विरोधी शासक सशंकित हो गये। बंगाल का तत्कालीन गवर्नर क्लाईव भी व्यग्र हो गया। उसने शीघ्र ही अब्दाली के विरुद्ध प्रतिरक्षात्मक संधि करने का निश्चय किया। अवध के नवाव शुजाउद्दौला को इस कार्य के लिये माध्यम चुना गया, क्योंकि बंगाल गवर्नर का जवाहरसिंह के साथ सीधा सम्पर्क नहीं था। क्लाईव के उत्तराधिकारी वेरलस्ट ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला को पत्र लिखा कि "आपके पिता की जवाहर क पिता से घनिष्ट मित्रता थी, इसलिए आप ही उससे बात करें।" इस वातावरण को तैयार करने के लिए बंगाल सरकार ने नवाब को अनेक पत्र लिखें और उसी के द्वारा सुरक्षा संधि का वातावरण बनाने का प्रयत्न किया गया था।[1]

इस समय जवाहरसिंह भी एक ओर मराठों से संघर्षरत था, तो दूसरी ओर उसे अब्दाली का भय था। वह स्वयं अंग्रेजों से संधि करने को उत्सुक था।[2] इसलिए वह भी अब्दाली के विरूद्ध संयुक्त मोर्चे में सम्मिलित हो गया। अप्रेल १२, १७६७ ई० को जवाहरसिंह का मोहम्मदरजा खां के नाम एक पत्र उसके वकील श्रीकृष्ण के द्वारा पहुँचा, उसमें मोहम्मदरजा खां से यह प्रार्थना की गई कि वह अपने प्रभाव से कलकत्ता के प्रमुख व्यक्तियों को उसके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध और संधि करने के बारे में सहमति प्राप्त कर लेवें, ताकि वह अब्दाली के साथ युद्ध को सफल बना सके और सफलता प्राप्त कर सके। इससे बंगाल के लोगों को शान्ति प्राप्त हो सकेगी और भारत की व्यवस्था यथावत बनी रहेगी। उसने पत्र में यह भी प्रस्ताव किया कि गवर्नर उचित समझे तो जवाहरसिंह शाह आलम द्वितीय को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा कर, गाजीउद्दीन को उसका वजीर घोषित कर देगा। रणथम्भोर का किला जवाहरसिंह स्वयं अपने अधिकार में लेना चाहता था।[3] गवर्नर ने मोहम्मदरजा खां के माध्यम से ही जवाहरसिंह को पत्रोत्तर दिया कि इन सब बातों पर विस्तृत रूप से विचार करने के लिए वह अपना एक विश्वास पात्र वकील बनारस

---

१. केलेण्डर०, २, प० सं० २६४; जाट्स०, पृ० १६६। बंगाल गवर्नर व नवाब के मध्य जो पत्र व्यवहार हुआ था, उससे स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि जवाहर को अपने पक्ष में करने के लिए अंग्रेज कितने अधिक इच्छुक थे। कलेण्डर०, २, प० सं० २०१, २३५, २५५।

२. केलेण्डर०, २, प० सं० २६५–२६६; जाट्स०, पृ० १६६।

३. केलेण्डर०, २, प० सं० २६५–२६६; जाट्स०, पृ० १६७।

भेज दें, जहाँ कि वह स्वयं जा रहा है।[1] इसके अनुसार जवाहरसिंह ने डोन पेड्रो डी सिल्वा को अपना वकील नियुक्त किया।[2] उधर अवध के नवाब ने अंग्रेज गवर्नर को लिखा कि 'रुहेलों पर विश्वास नहीं किया जा सकता, परन्तु जवाहर विश्वास योग्य है। यदि आप और मैं जवाहरसिंह की सहायता करें तो वह अब्दाली से लोहा लेने को तैयार हो जायगा"।[3]

इसी समय १७६७ ई० में अंग्रेजों और हैदरअली के बीच दक्षिण में युद्ध प्रारम्भ हो गया। बंगाल का गवर्नर बनारस जाकर जवाहरसिंह के वकील से बातें नहीं कर सका। निजाम हैदराबाद ने भी हैदरअली का साथ दिया। मराठे भी अंग्रेजों के विरुद्ध हो गये। अहमदशाह अब्दाली पंजाब में ही सिक्खों से पराजित हो, वापस अपने देश को लौट गया। मराठे उत्तरी भारत को जीतने का पुनः विचार करने लगे। यह अफवाह सर्वत्र फैल चुकी थी कि नागपुर का राजा जानूजी भोंसले और रघुनाथराव की सम्मिलित सेनाएं उत्तरी भारत पर आक्रमण करने वाली हैं। पेशवा माधवराव, अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला और अंग्रेजों के सम्बन्धों के सम्बन्ध में पता लगाना चाहता था एवं उसने एक पत्र द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध नवाब वजीर की पूरी-पूरी सहायता करने का प्रस्ताव किया, क्योंकि माधवराव की व्यक्तिगत जानकारी के अनुसार अंग्रेज नवाब वजीर को अनेकानेक कष्ट पहुँचाते थे।[4]

अवध का नवाब इस समय पूर्णरूपेण अंग्रेजों के प्रभाव में था और वह यह भी जानता था कि मराठों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इसलिए उसने अंग्रेजों के साथ सम्पर्क बनाये रखना ही उचित समझा। उसने पत्रोत्तर में मराठों को लिख दिया कि अंग्रेजों के साथ उसकी गाढी मित्रता है, तब तो मराठों को उत्तरी भारत की अपनी योजना त्यागने को बाध्य होना पड़ा, क्योंकि जो अब्दाली के विरुद्ध प्रतिरक्षा दल अंग्रेजों द्वारा आयोजित था, अब उनके ही विरुद्ध प्रयोग में लाने की सम्भावना थी। जवाहरसिंह ने तो उनके प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार करना भी प्रारम्भ कर दिया था, तब भी जवाहरसिंह अंग्रेजों से सम्पर्क बढ़ाने को

---

१. केलेण्डर०, २, प० सं० ३१५, ३६५; जाट्स०, पृ० १९८।
२. केलेण्डर०, २, प० सं० ४६४–४६५, ६४२–६४३।
३. केलेण्डर०, २, प० सं० ३४६; जाट्स० पृ० १९९–२००।
४. केलेण्डर०, २, प० सं० ६६७; जाट्स, पृ० २००।

समुत्सुक था ।[१] उसने अंग्रेजों के साथ मित्रता को महत्त्व दिया और गवर्नर को पत्र द्वारा सूचित किया कि जवाहरसिंह के दिल की बात कहने के लिए उसने विशेष रूपेण अपने वकील पादरी डोन पैड्रो डी सिल्वा को कलकत्ता भेजा जा रहा है ।[२] तद्नुसार जवाहरसिंह ने सन् १७६७ ई० के पिछले महीनों में पादरी डोन पैड्रो डी सिल्वा और पादरी वैण्डल को कलकत्ता के लिए रवाना किया, किन्तु जब वे दोनों आगरा पहुँचे तब कई एक अनपेक्षित उपद्रव आदि कठिनाइयां उनकी राह में बाधक हुई और उन्हें वापस जवाहरसिंह की सेवा में लौट जाना पड़ा ।[३]

(४) जवाहरसिंह और उसके यूरोपीय सेनानायक:

मुग़ल साम्राज्य के विघटन काल में बहुत से यूरोपीय सैनिक अपने भाग्य परीक्षा के लिये भारत आये । अंग्रेजी ढंग से शिक्षित सेना क्लाईव के सेनानायकत्व में बंगाल और अवध के नवाबों को पूर्णतया पराजित कर चुकी थी । इस कारण इन विदेशी सैनिकों की ख्याति भारत में फैलने लगी । अतः प्रत्येक राजा और नवाब भी इन लोगों को अपनी सेना में रख कर उनकी सहायता से अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने के लिए इच्छुक था । नजीबुद्दौला से युद्ध के बाद जवाहरसिंह अपने विरोधी सरदारों और मराठों का दमन करना चाहता था । तदर्थ उसे भी विदेशी सेनानायकों व सेना की आवश्यकता थी ।[४]

इसी समय अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेवा छोड़ कर जर्मन सेनानायक समरू (वाल्टर रैनहर्ड सौम्ब्रे) अपने आधीन विदेशी सैनिक दल के साथ लगभग अप्रेल, १७६५ ई० में जवाहर की सेवा में उपस्थित हुआ,[५] परन्तु उसके शीघ्र ही बाद वह जवाहरसिंह को छोड़ कर जयपुर के राजा की सेवा में जा पहुँचा । किन्तु वहाँ वह अधिक समय तक नहीं टिक पाया और कुछ ही माह के बाद वापस लौट कर जवाहरसिंह की सेवा में आ गया । तद्नन्तर उसकी मृत्यु तक उसकी सेवा में निरन्तर बना रहा ।[६] इस सेनानायक की सहायता से अपनी सेना का एक भाग

---

१. जाट्स०, पृ० २०१ ।
२. केलेण्डर०, २, प० सं० ६४२–६४३; जाट्स, पृ० २०१ ।
३. केलेण्डर०, २, प० सं० ८५३–८५४ ।
४. यदु०, पृ० ३२१ ।
५. बेगम० पृ० ६; जाट्स० पृ० १८० ।
६. एशियाटिक०, मिसलेनियस ट्रेक्टस पृ० ३१ ।

(विदेशी सैनिकों का) शक्तिशाली बना दिया, जो कि जाटों से अधिक योग्य और विश्वासपात्र थे। इसी सेनानायक की सहायता से जवाहर ने अपने सभी विरोधी सरदारों का दमन कर दिया और मराठों का भी सफलतापूर्वक सामना करना प्रारंभ किया और वह मराठों को सारे उत्तरी भारत से बाहर निकालने की योजना बनाने लगा।[१]

समरू और उसके विदेशी सैनिकों की उपयोगिता और विशेष सैनिक महत्त्व को देखते हुए जवाहरसिंह को और अधिक अपनी सेना में ऐसे सैनिकों और सेनानायकों की संख्या बढ़ाना जरूरी जान पडा, क्योंकि मराठों से सफलतापूर्वक सामना कर सकने के लिए इस प्रकार अपनी सैनिक शक्ति की वृद्धि अनिवार्य जान पड़ी। अतः रुहेलों की सेवा छोड़ कर फ्रेंच सेनानायक रैंने मादे ने जवाहरसिंह की सेवा करने के प्रति अपनी इच्छा प्रकट की तो जवाहरसिंह ने उसका सहर्ष स्वागत किया और अपनी सेवा में सम्मिलित होने के लिए उसे आमन्त्रित किया, तब रैंने मादे अपने सैनिक दल के साथ रुहेलों की सेवा छोड़ कर लगभग जुलाई १७६७ ई० में जवाहरसिंह की सेवा में जा पहुँचा।[२]

इन दोनों की यूरोपीय सेनानायकों ने पूर्ण तत्परता और मेहनत के साथ जवाहरसिंह की सेना को सुशिक्षित तथा सुसज्जित किया था। पुनः जब मांवण्डा के युद्ध मे संकटपूर्ण स्थिति में उसकी दूसरी सारी सेना अपनी सुस्पष्ट पराजय से आतंकित होकर भाग खड़ी हुई, तब भी इन दोनों यूरोपीय सेनानायकों तथा उनके सैनिक दलों ने पूरी दृढ़ता, वीरता और साहस के साथ जवाहरसिंह का अंत तक साथ दिया। तब वे माधोसिंह की सेना से सूर्यास्त तक युद्ध करते रहे और अपने स्वामी जवाहरसिंह को बचा कर भरतपुर ले गये।[३]

---

१. फाल०, २, पृ० ३४३; जाट्स०, पृ० १८०।
२. रैंने०, पृ० ६६।
३. रैंने०, पृ० ८०–८१; जाट्स०, पृ० २१०, २०६ फु० नो०।

८ पुष्कर में जवाहरसिंह और उसके परिणाम

(१) जवाहरसिंह के मराठा–विरोधी प्रयत्न :

जवाहरसिंह को मराठों के विरुद्ध लगभग ढ़ाई महीने के इस निर्णायक अभियान में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई थी। उसने कालपी तक के सारे मराठा प्राधिकार क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया।[१] अतः तब उसकी ख्याति और शक्ति चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। उसकी सेना में समरू और रैने मादे जैसे योग्य व स्वामिभक्त सेनापति थे। अपनी इन सफलताओं से मदान्ध होकर अब जवाहरसिंह मराठों को चम्बल पार ही नहीं, समस्त उत्तरी भारत से बाहर निकालने का आयोजन बनाने को प्रयत्नशील हुआ।[२] आयोजन को परिपूर्ण करने के तथा उसकी सफलता को सुनिश्चित बनाने हेतु ही उसने सितम्बर, १७६७ ई० को मराठों से कुछ प्रदेश लेकर समझौता कर लिया,[3] जिससे उसे तदर्थ पर्याप्त अवसर मिल सके।

विभिन्न महत्त्वपूर्ण शक्तियों को मराठों के विरुद्ध संगठित करने हेतु अब जवाहर प्रयत्नशील हुआ। इसी हेतु जवाहर ने अपना एक दूत पादरी डोन पेड्रो डी सिल्वा को अक्टूबर, १७६७ ई० में कलकत्ता के लिए रवाना किया।[४] रुहेला सरदार नजीबुद्दौला को भी इस मराठा विरोधी संघ में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया।[५] उसने अब राजपूत राजाओं के साथ परामर्श करने के लिए राजस्थान जाने

---

१. पे० द०, २६, प० सं० १८५, १४६, १५२, २५३; फाल०, २, पृ० ३४७।
२. वैण्डल०, पृ० १०६; हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६४; जादूस०, पृ० २०२; पूर्व० पृ० १६१।
३. पे० द० (नई), ३, प० सं० १३४।
४. केलेण्डर०, २, प० सं० २०१, ६४२; जादूस० पृ० २०१।
५. हिंगणे०, २, प० सं० १००।

का कार्यक्रम बनाया। मारवाड़ का राजा विजयसिंह राठौड़ उसका मित्र ही नहीं था, किन्तु मराठों का बड़ा विरोधी भी था।[१] जवाहरसिंह की विशेष प्रेरणा से मारवाड़ नरेश विजयसिंह ने जवाहरसिंह के पास विचार विमर्श करने के लिए पंचौली परसादी-राम को डीग भेजा।[२] तब तत्सम्बन्धी आयोजन बनाने के लिए जवाहरसिंह ने विजयसिंह को अजमेर के निकट पुष्कर[३] नामक पवित्र स्थान पर आमन्त्रित किया[४], परन्तु जवाहरसिंह के अभिमान, जल्दबाजी और अदूरदर्शितापूर्ण कूटनीति के कारण, यह सारा आयोजन पूरा बनने ही नहीं पाया।[५]

(२) पुष्कर में मिलन तथा जाट–राठौड़ सन्धि :

भरतपुर से पुष्कर का मार्ग जयपुर राज्य की सीमाओं में होकर गुजरता है। अतः पुष्कर यात्रा पर जाने हेतु जवाहरसिंह ने जयपुर राजा माधोसिंह से स्वीकृति प्राप्त करनी चाही।[६] माधोसिंह ने उत्तर दिया कि यदि वह एक मित्र के रूप में वस्तुतः तीर्थ यात्रा पर जा रहा है, तो केवल कुछ ही सेना के साथ जा सकता है।[७] लेकिन जवाहरसिंह को अपनी सैनिक शक्ति का अहम् था, अतः यह सुझाव उसे कैसे स्वीकार होता। माधोसिंह की उस बात की उपेक्षा कर वह अक्टूबर, १७६७ ई० महीने के अन्त में ससैन्य[८] डीग या कुम्हेर से कूच कर जयपुर राज्य की सीमाओं में लूटमार करता हुआ शुक्रवार, नवम्बर ६, १७६७ ई० को पुष्कर पहुँचा।[९]

---

१. पे० द० (नई), १, प० सं० १८६; यदु०, पृ० ३१२।
२. जोधपुर०, ३, पृ० ३६७–३६८।
३. रैने० (पृ० ७०) के अनुसार जवाहरसिंह स्वयं के कोई पुत्र नहीं था, अतः उसने अपने छोटे भाई रतनसिंह के पुत्र केहरीसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। इसलिए उसने धार्मिक तीर्थ यात्रा करने का विचार किया।
४. हैण्डल०, पृ० १०६; जोधपुर०, ३, पृ० ३६७–३६८; पूर्व०, पृ० १६१।
५. फाल०, २, पृ० ३४८।
६. रैने०, पृ० ७०।
७. चहार० ईलियट०, ८, पृ० २२५।
८. चहार० (ईलियट०, ८, पृ० २२५) के अनुसार इस समय जवाहरसिंह के पास ६० हजार घुड़सवार, एक लाख पैदल और एक हजार छोटी तोपें थीं।
९. हैण्डल० पृ० १०७; चहार० ईलियट०, ८, पृ० २२५; जोधपुर०, ३, पृ० ३६८; वंश०, ४, पृ० ३७१६; पूर्व०, पृ० १६१।

वहां विजयसिंह ने उसका पूर्ण स्वागत किया। दोनों राज्यों के नरेश एक ही आसन पर बैठे तथा पगड़ी का विनिमय कर पगड़ी बदल भाई बन गये।[१]

मराठों को उत्तर भारत से बाहर निकालने के लिए दोनों में सन्धि हो गई, जिसमें यह तय हुआ कि मालवा प्रदेश जयपुर महाराजा माधोसिंह को दे दिया जायगा तथा गुजरात प्रदेश पर जोधपुर के नरेश विजयसिंह का अधिकार हो जवेगा और पूर्वी भाग जाटों के अधिकार में रहेगा। सब सम्मिलित रूप से मराठों का विरोध कर उन्हें उत्तरी भारत से खदेड़ देंगे।[२]

(३) माधोसिंह से बैर होना तथा जवाहरसिंह का पुष्कर से लौटना :

लेकिन् माधोसिंह न तो इस संधि वार्ता में सम्मिलित हुआ और न उसने इस संधि को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में अपने सहयोग अथवा सहमति विषयक कोई स्वीकृति सूचित की थी, जो इस आयोजन की सफलता के लिए अत्याश्यक था। अत: यह संधि हो जाने के बाद महाराजा विजयसिंह ने जयपुर नरेश माधोसिंह के पास अपना एक दूत भेज कर उसे उक्त संधि से अवगत करवाया और मराठों को उत्तर भारत से खदेड़ देने के लिए इस मराठा विरोधी संघ में सम्मिलित होने के लिए उसे साग्रह पुष्कर आमन्त्रित किया।[३] लेकिन् अहंकारी, अदूरदर्शी, संकीर्ण विचारों वाला और राजनीति से अनभिज्ञ माधोसिंह के दिल में जवाहरसिंह के प्रति पूर्व समय का मनोमालिन्य था। अतएव बीमारी का बहाना बनाते हुए उसने पुष्कर जाने में अपनी असमर्थता सूचित की और इस मराठा-विरोधी संघ में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। यों उसने अपने मराठा साथियों का विरोध करना उचित नहीं समझा,[४] क्योंकि प्रथम, तो जाट राज्य का राजनैतिक ईकाई के रूप में कोई अस्तित्व नहीं था। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा ही उसे इस रूप में अस्तित्व प्राप्त हुआ था। इस जाट राज्य का संस्थापक बदनसिंह अपने सम्पूर्ण जीवन काल में अपने आप को ठाकुर या चौधरी ही सम्बोधित करवाता रहा। जयपुर के राजा के प्रति वह अपने अधिश्वर का सा ही बर्ताव करता रहा। प्रति

---

१. वंश०, ४, पृ० ३७१९; फाल०, २, पृ० ३४८।

२. जोधपुर०, ३, पृ० ३९८–३९९; वंश०, ४, पृ० ३७२०; वीर०, ३, पृ० १३०४; जयपुर०, पृ० ३१८; ओझा०, २, पृ० ७१८–७१९।

३. जोधपुर०, पृ० ३९९; वंश०, ४, पृ० ३७२०; वीर०, ३, पृ० १३०४।

४. जोधपुर०, ३, पृ० ३९९।

वर्ष दशहरा के दिन वह नजराना (भेंट) लेकर जयपुर दरबार में उपस्थित होता था। राजा सूरजमल के शासन काल (१७५६–१७६३ ई०) में जाटों का राज्य दूर-दूर तक फैल गया था, तथापि वह भी अपने पिता बदनसिंह की ही भांति कछवाहा राजघराने के प्रति वफादार बना रहा। परन्तु अब उसका पुत्र और उत्तराधिकारी जवाहरसिंह अलग ही विचारधारा का व्यक्ति था। वह नाम मात्र को भी माधोसिंह की अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं था।[१]

द्वितीय, जयपुर राज्य में माधोसिंह व ईश्वरीसिंह के मध्य उत्तराधिकार संघर्ष के समय सूरजमल ने माधोसिंह के विरुद्ध ईश्वरीसिंह को सहायता दी थी, जिससे माधोसिंह के साथ सूरजमल के सम्बन्ध पहले जैसे मैत्रीपूर्ण नहीं रहे, प्रत्युत उनमें तनाव आ गया था।[२]

तृतीय, माधोसिंह द्वारा सद्यः अधिकृत अलवर के किले को सन् १७५६ ई० में अपने पिता सूरजमल के आदेश पर जवाहरसिंह ने जीत लिया था। माधोसिंह को जवाहरसिंह के हाथों अपनी पराजय तब भी खटक रही थी।[३]

चतुर्थ, जयपुर के महाराजा माधोसिंह और उसके जागीरदार माछोड़ी के प्रतापसिंह नरूका में जब अनबन हो गई थी और अपनी मृत्यु के भय से प्रतापसिंह सूरजमल की शरण में भरतपुर चला गया, तब सूरजमल ने उसे अपनी सेना में रख लिया। माधोसिंह के शत्रु को सूरजमल ने अपने यहां शरण दी, जिससे दोनों के सम्बन्धों में एक गहरी खाई पड़ गई।[४]

पंचम, दिसम्बर, १७६५ ई० में जवाहरसिंह ने अपनी सिक्ख सेना के साथ जयपुर राज्य की सीमाओं में घुस कर जब वहां लूटमार प्रारम्भ कर दी थी, तब मराठों की सहायता से ही माधोसिंह इस स्थिति पर काबु पा सका था। मराठों के बीच-बचाव करने पर ही जवाहरसिंह ने माधोसिंह से समझौता कर लिया था।[५] परन्तु दोनों राज्यों की सीमाएं मिली हुई थीं, जिससे उनके बीच सीमा सम्बन्धी झगड़े बराबर चलते ही रहते थे। माधोसिंह के आधीन नारनोल के जिले को

---

१. जयपुर०, पृ० ३१६–३१७; मथुरा०, पृ० १८३–१८४; पूर्व० पृ० १९१।
२. जाट्स०, पृ० २०३; पर्टो०, पृ० २०८।
३. पे० द० (नई), १, प० सं० १८९; पे० द०, २७, प० सं० १२८।
४. फाल०, ३, पृ० २३१–२३२; जाट्स०, पृ० २०५।
५. फाल०, २, पृ० ३७६।

जवाहरसिंह अपने अधिकार में कर लेना चाहता था। अतः बढ़ती हुई जाटों की यह शक्ति जयपुर राज्य की पूर्वी सीमा के लिए एक बड़ा खतरा बन गई थी।[१]

षष्ठ, माधोसिंह ने जवाहरसिंह के भाई और निराश प्रतिद्वन्द्वी नाहरसिंह को अपने राज्य में शरण दी थी। कुछ ही समय बाद जयपुर राज्य के अन्तर्गत शाहपुरा-मनोहरपुर नामक स्थान पर विषपान कर नाहरसिंह ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी थी। तब कामुक और आचरणहीन जवाहर ने माधोसिंह से यह मांग की कि नाहरसिंह की सुन्दर युवती विधवा को उसके सुपुर्द कर दी जावे। चरित्र भ्रष्ट जवाहर के भय से उस विधवा ने भरतपुर जाने से इन्कार कर दिया और बाद में विषपान कर आत्म हत्या कर ली। अपनी शरण में आये हुए व्यक्ति को माधोसिंह भी जबरदस्ती नहीं निकाल सकता था। अतः जवाहरसिंह ने माधोसिंह पर यह दोषारोपण किया कि वह इस सुन्दर विधवा को अपने अन्त.पुर में रखना चाहता था, परन्तु सरकार के अनुसार वास्तव में स्वयं जवाहर ही अपने भाई की इस विधवा को अपने अन्तःपुर में रखना चाहता था। जवाहर के इस दोषारोपण से क्रुद्ध होकर माधोसिंह ने जवाहरसिंह को बड़ा सख्त जवाब दिया, जिससे भी उनके आपसी सम्बन्धों में बड़ी कटुता आ गई थी।[२]

यों दोनों में पूर्व समय से ही मनमुटाव चला आ रहा था, वह अब और भी अधिक उभर आया। माधोसिंह ने बीमारी का बहाना बना कर पुष्कर जाने से इन्कार ही नहीं किया,[३] किन्तु उसने विजयसिंह को भी इस बात पर बुरी तरह फटकारा कि उसने एक किसान के लड़के और जयपुर राज्य के सेवक को अपना भाई और राजनीतिक समकक्ष मान कर अपने राठौड़ पूर्वजों की प्रतिष्ठा को कम कर दिया है।[४] माधोसिंह के ये वाक्य जवाहरसिंह के मस्तिष्क रूपी बारूद के ढ़ेर में चिनगारी बन गये। जल्दबाज, स्वाभिमानी और सुसंगठित सेना से सशक्त जवाहरसिंह यह कभी नहीं भूल सकता था कि वह एक राजा का पुत्र था। अतः माधोसिंह की ये बातें सुन कर जवाहरसिंह क्रोधांध हो माधोसिंह को धमकी भरा संदेश भेजा कि यदि

---

१. वैण्डल०, पृ० १०७; वंश०, ४, पृ० ३७१८।
२. वंश०, ४, पृ० ३७१८-३७१९; जाट्स०, पृ० २०५; जयपुर०, पृ० ३१८; नरेन्द्र०, पृ० १११; थर्टी०, पृ० २०९; मथुरा०, पृ० १८४।
३. जोधपुर०, ३, पृ० ३९९; वीर०, ३, पृ० १३०३।
४. जयपुर० पृ०, ३१८; मथुरा०, पृ० १८४।

कामा और खोरी के परगने उसे नहीं दिये गये, तो वह जयपुर राज्य में लूटमार करेगा। यों जवाहरसिंह ने स्वयं के विनाश को निमन्त्रण दे दिया।[1]

यद्यपि इस शक्तिशाली और धन सम्पन्न जाट राजा से माधोसिंह भयभीत था, लेकिन इतना सब कुछ हो जाने के बाद अब युद्ध के मैदान में उतरना भी उसके लिए व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। उसके सामने दो ही मार्ग थे या तो वह कामा और खोरी परगने जवाहरसिंह को दे दें अथवा युद्ध के मैदान में उसका सामना करें। मुगल साम्राज्य के सर्वश्रेष्ठ सामन्तों के उस सुयोग्य उत्तराधिकारी ने अपने आधीन जाट राजा की धमकी से ही कामा और खोरी परगने जवाहर को देने की अपेक्षा,[2] उसे युद्ध के मैदान में चुनौती देना ही उचित समझा।[3]

जवाहरसिंह कुछ समय तक पुष्कर ठहरा रहा, जिससे माधोसिंह को युद्ध के लिए समुचित तैयारी करने का अत्यावश्यक अवसर मिल गया। उसने पैदल सैनिकों के अतिरिक्त १६ हजार घुड़सवार भी एकत्रित कर लिये।[4] जब जवाहरसिंह पुष्कर से अपने राज्य को लौटने लगा तब जयपुर के आक्रमण की सम्भावना को ध्यान में रख कर मारवाड़ के महाराजा विजयसिंह ने जवाहरसिंह को भरतपुर तक पहुँचा देने का निश्चय किया और जवाहरसिंह के साथ-साथ वह भी पुष्कर से भरतपुर की ओर चल पड़ा, किन्तु अपनी सैनिक शक्ति के अहम् में जवाहरसिंह ने तब विजयसिंह को देवलिया से ही वापस लौटने को बाध्य किया।[5] तब विजयसिंह तो वहाँ से साम्भर की ओर चला गया तथा जवाहर की सहायतार्थ महता मनरूप और सिंघवी

---

१. जोधपुर०, ३, पृ० ३६६; वंश०, ४, पृ० ३७२०।

२. चहार० ईलियट०, ८, पृ० २२५; जोधपुर०, ३, पृ० ३६६; चर्टो०, पृ० २११।

३. जोधपुर०, ३, पृ० ३६६; वंश०, ४, पृ० ३७२०।

४. पाल०, २. पृ० ३४६। चहार०, (ईलियट०, ८, पृ० २२६) के अनुसार माधोसिंह के पास २० हजार घुड़सवार व २० हजार पैदल सेना थी। वीर० (३, पृ० १३०५) के अनुसार माधोसिंह के पास ६० हजार सेना थी। जोधपुर०, (३, पृ० ४००) के अनुसार माधोसिंह के पास कुल ७० हजार सेना थी। रैने० (पृ० ७०) के अनुसार इस समय माधोसिंह के पास कुल ६० हजार सेना थी।

५. जोधपुर०, ३, पृ० ४००; वीर०, ३, पृ० १३०४; रेऊ०, २, पृ० ३८२।

शिवचन्द के नेतृत्व में कोई तीन हजार राठौड़ सेना उसके साथ भेजी।[१] उसी समय धूला के ठाकुर दलेलसिंह, जयपुर के दीवान हरसहाय खत्री और बख्शी गुरुसहाय खत्री के नेतृत्व में कछवाहा सेना ने जवाहरसिंह को युद्ध के मैदान में चुनौती देने के लिए कूच कर दिया।[२]

(४) मावण्डा युद्ध:—

पुष्कर से देवलिया होता हुआ जब जवाहरसिंह दिसम्बर १४, १७६७ ई० को नारनोल से २३ मील दक्षिण पूर्व में मावण्डा[३] नामक गांव के निकट पहुँचा तब उसका पीछा कर रही कछवाहा सेना बहुत नजदीक आ पहुँची।[४] जवाहरसिंह के पास बहुत ही कम समय था। तब सैनिक दृष्टि से उपयुक्त मोर्चा लेने के लिए पुनः उसके सामने तंग घाटी भी थी, जिससे जवाहरसिंह के लिए विकट समस्या उठ खड़ी हुई। अतः अब उसने अपना सामान आगे भिजवा दिया और जवाहरसिंह स्वयं युद्ध के लिए अपनी सेना को व्यवस्थित करने ही लगा था कि जाटों के खून के प्यासे कछवाहा सैनिक उस पर टूट पड़े।[५] जाटों ने भी अपनी ओर से जयपुर सेना पर प्रत्याक्रमण कर कछवाहा सेना के प्रथम आक्रमण को असफल ही पीछे धकेल दिया। कछवाहों का तोपखाना तथा उनकी पैदल सेना तब तक वहां नहीं पहुँच पाई थी।[६]

कछवाहों की इस प्रारम्भिक विफलता से लाभ उठा कर जाट सेना तब अपने सामने की तंग घाटी में प्रवेश कर गई, क्योंकि वह चाहती थी कि इस घाटी को शीघ्रता से पार कर दूसरी ओर के मैदान में पहुँच जावे, लेकिन घाटी काफी लम्बी थी। इधर जाट सेना जब घाटी के मध्य तक पहुँची तब तक दोपहर के समय क्रोधोन्मत कछवाहा सेना पुनः संगठित हो वापस उसके पीछे आ पहुँची और निर्भीकता

---

१. जोधपुर०, ३, पृ० ४०१।
२. जोधपुर०, ३, पृ० ४०१; वीर०, ३, पृ० १३०५।
३. मावण्डा रींगस–रेवाड़ी दिल्ली की लाइन पर जयपुर से ठीक उत्तर में ६० मील की दूरी पर रेल्वे स्टेशन है।
४. रैने०, पृ० ७०।
५. वैण्डल०, पृ० १०८; पे० द०, २९, प० सं० १९२; पे० द० (नई), ३, प० सं० १४४; जोधपुर०, ३, पृ० ४०१; दे० फा०, पृ० १३६; जादूस०, पृ० २०८; जयपुर०, पृ० ३१८।
६. रैने०, पृ० ७०।

व निर्दयता के साथ, उसने जाट सेना पर पूरे वेग के साथ आक्रमण कर दिया।[१] जाट सेना ने भी पीछे मुड़ कर कछवाही सेना का सामना किया और जाटों की तोपों ने कछवाहा सेना पर आग उगलना प्रारम्भ किया, लेकिन् युद्ध को क्रिड़ांगन समझने वाले राजपूतों ने मृत्यु का सहज आलिंगन कर सामने डटे रहे और अन्त में तलवारें निकाल कर जाट सेना का संहार करने को उन पर टूट पड़े। बहुत ही भयंकर लड़ाई होने लगी और तंग घाटी से रुधिर की नदी बह निकली।[२]

तब तो जवाहरसिंह की जाट सेना के पैर भी उखड़ गये। वह अपना तोपखाना, सामान और यहाँ तक कि अपने राजा को भी छोड़ कर रण भूमि से भाग खड़ी हुई,[३] जिससे वहाँ सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई। इस परिस्थिति में भी यूरोपीय सेनानायक समरू और रैंने मादे के सुशिक्षित सैनिक दलों ने बड़ी बहादुरी और धैर्य दिखाया तथा साथ ही शत्रु का सामना करते रहे।[४] यद्यपि दूसरी सेना सूर्यास्त से पहले ही भाग निकली थी, ये सैनिक दल रात्रि होने तक उसी घाटी में डटे रहे और जवाहर-सिंह की रक्षा करते रहे। अंधेरा हो जाने के बाद वे उसे अपने साथ बचा कर वापस अपने राज्य में सुरक्षित ले आए। किन्तु जाट सेना की ७० तोपें, डेरे व अन्य सामान युद्ध भूमि में ही छोड़ कर उन्हें डीग की ओर जल्दी-जल्दी लौट जाना पड़ा।[५]

इस युद्ध में दोनों पक्षों के मिला कर लगभग १० हजार सैनिक मारे गये।[६]

---

१. रैंने०, पृ० ७०; वंश०, ४, पृ० ३७२१।

२. वैण्डल०, पृ० १०८; चहार० ईलियट०, ८, पृ० २२६; वंश० ४, पृ० ३७२१-३७२५; वीर०, ३, पृ० १३०५।

३. वैण्डल०, पृ० १०८।

४. रैंने०, पृ० ७०।

५. वैण्डल०, पृ० १०८; रैंने०, पृ० ७१; चहार० ईलियट०, ८, पृ० २२६; जोधपुर०, ३, पृ० ४०३; फाल०, २, पृ० ३५०।

६. रैंने०, पृ० ७०। फाल० (२, पृ० ३५०), मथुरा० (पृ० १८५) के अनुसार इस युद्ध में कुल पांच हजार सैनिक ही मारे गये थे। चहार० (ईलियट०, ८, पृ० २२६) के अनुसार केवल जवाहरसिंह के ही २० हजार घुड़सवार व पैदल सैनिक मारे गये थे। लेकिन् चहार० का कथन अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है, क्योंकि रैंने मादे जो इस युद्ध में उपस्थित था और जवाहरसिंह की ओर से एक सेनानायक के रूप में युद्ध लड़ा था। वह अपने संस्मरण में दोनों पक्षों के मारे जाने वाले सैनिकों की संख्या १० हजार बताता है, जिसे ही मान्य किया जा सकता है। इस रूप में यह स्पष्ट है कि चहार० में दी गई सैनिक संख्या मान्य नहीं हो सकती।

वैण्डल के अनुसार केवल राजपूतों के ही दो-तीन हजार सैनिक काल के ग्रास व घायल हुए थे।[1] इनमें से अधिकांश राजपूत तोपों की मार से खेत रहे, किन्तु इन वीर और निर्भीक राजपूतों ने तोपों का आश्चर्यजनक वीरता और साहस के साथ सामना किया था। जयपुर के करीब-करीब सभी सेनापतियों ने व बड़े-बड़े सरदारों ने वीर गति प्राप्त की। दीवान हरसहाय खत्री व बख्शी गुरसहाय खत्री और जयपुर सेना का प्रधान सेनानायक धूला का ठाकुर दलेलसिंह अपने लड़के व पौत्र के साथ धराशायी हुए।[2] जिसके फलस्वरूप तब जयपुर के कितने ही सामन्त परिवारों में केवल आठ-दस साल की आयु के ही बच्चे रह गये।[3]

यद्यपि यह युद्ध अनिर्णायक ही रहा तथापि इसमें जवाहरसिंह की स्पष्टतया हार हुई थी। ऐसा भयंकर युद्ध जाट इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। इस युद्ध से जाटों की शक्ति व प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा, जिसका परिणाम जवाहरसिंह के लिए बड़ा घातक हुआ। वह बच कर किसी प्रकार वापस लौट आया, परन्तु यहीं से जाट राज्य का सूर्य ढलने लगा।[4]

(५) कामा का युद्धः—

पराजित जवाहरसिंह भरतपुर पहुँच कर पुनः अपने विजयी होने का दावा करने लगा।[5] तब मावण्डा युद्ध में सफल माधोसिंह पुनः जवाहर से बदला लेने हेतु प्रयत्नशील हुआ। मावण्डा में जवाहर की पराजय से उसके अनेकानेक अन्य शत्रु भी पुनः उठ खड़े हुए। चम्बल पार के उसके आधीन क्षेत्रों में मराठों ने पुनः गड़बड़ मचाना प्रारम्भ कर दिया।[6] माधोसिंह ने नजीबुद्दौला को पत्र लिखा कि अब समय जाट राज्य को समाप्त करने का आ गया है। फर्रुखनगर का नवाब मुसावी खां जो कि एक साल पूर्व ही जवाहर की कैद से मुक्त किया गया था, अन्य रुहेलों के साथ संगठित होने लगा। माधोसिंह ने मुगल सम्राट् शाह आलम द्वितीय

---

१. वैण्डल०, पृ० १०८।
२. जोधपुर०, ३, पृ० ४०२–४०३; वीर०, ३, पृ० १३०५।
३. जाट्स०, पृ० २११।
४. रैने०, पृ० ७१; चहार० ईलियट०, ८, पृ० २२६; हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६५; दि० क्रा०, पृ० १३६; जाट्स०, पृ० २०६; मथुरा०, पृ० १८४–१८५; पूर्व०, पृ० १६१।
५. फाल०, २, पृ० ३५०।
६. वैण्डल०, पृ० १०८।

को भी सैनिक सहायता करने के लिए पत्र द्वारा प्रार्थना की ताकि जाटों को पराजित कर पुनः आगरा किला उनसे लिया जा सके और उसे सम्राट् की राजधानी बनाया जावे ।[१]

इसके तुरन्त बाद १६ हजार सेना[२] लेकर माधोसिंह ने जाट राज्य पर आक्रमण कर दिया । जवाहरसिंह इस आयी हुई विपत्ति का सामना करने में स्वयं को असमर्थ पा कर सिक्खों को अपनी सहायता के लिए बुलाया, तब कोई १० हजार सिक्ख उसके साथ आ मिले ।[३] अपने सुयोग्य स्वामिभक्त सेनानायक रैने मादे के मासिक वेतन में जवाहरसिंह ने ५ हजार रुपये की वृद्धि करके उसे और सैनिकों को भर्ती के लिये भी आदेश दिये ।[४] माधोसिंह नेससैन्य कूच कर अपनी सीमा के अन्तिम थाने कामा के पास जाट राज्य की सीमा पर पडाव किया । जवाहर ने भी माधोसिंह के सामने नतमस्तक होने की अपेक्षा अपने भाग्य का निर्णय रणभूमि में ही करना उचित समझा । फलस्वरूप फरवरी २६, १७६८ ई० को दोनों सेनाओं में घनघोर संघर्ष हुआ ।[५]

इस युद्ध में जाटों की बुरी तरह से हार हुई । उनके ४०० सैनिक मारे गये । उनकी सिक्ख सेना का सेनापति दानशाह घायल हुआ और वह अपने सिक्ख साथियों के साथ भाग निकला । इस पर जवाहरसिंह ने अपनी रक्षार्थ ७ लाख रुपये मासिक पर २० हजार सिक्ख सेना को पुनः आमन्त्रित किया ।[६]

शुजाउद्दौला, मराठे, रुहेला और माधोसिंह सब ही इस नवोदित जाट राज्य को समाप्त कर देना चाहते थे । शाह आलम द्वितीय ने माधोसिंह को पत्रोत्तर दिया कि वह आगे बढ़ कर आगरा पर अधिकार कर ले । उसकी सहायता के लिए मुसावी खां को भेजा जा रहा है ।[७] शुजाउद्दौला ने भी अँग्रेजों को जाटों के विरुद्ध

---

१. कलेण्डर०, २, प० सं० २२४; जाट्स० पृ० २१२ ।
२. यद्यपि रैने मादे ने माधोसिंह के साथ इस समय ६० हजार सेना होना लिखा है (रैने०, पृ० ७१), यदुनाथ सरकार इसे अतिशयोक्ति ही मानते हैं और उनके अनुसार तब माधोसिंह के साथ केवल १६ हजार सैनिक थे (फाल० २, पृ० ३५१) ।
३. फाल०, २, पृ० ३५१ ।
४. रैने०, पृ० ७१ ।
५. फाल०, २, पृ० ३५१ ।
६. फाल०, २, पृ० ३५१; मदुरा०, पृ० १८५ ।
७. कलेण्डर०, २, प० सं० २३४, २३५ ।

उनकी सहायता करने के लिए लिखा। लेकिन् अँग्रेजों ने जवाहरसिंह से की गई संधि पर दृढ़ता और ईमानदारी के साथ पालन करना ही उचित समझा। अँग्रेजों की स्वीकृति नहीं होने से शुजाउद्दौला में इतना साहस नहीं रहा कि वह जवाहर के विरुद्ध कदम उठा सके। अब माधोसिंह ने देखा कि उसको कहीं से भी कोई सहायता नहीं मिल रही है और उधर जवाहरसिंह के सिक्ख साथी उसकी सहायता पर पहुँचने वाले थे, अतः वह निराश हो गया।[१] उसने सिक्खों व जवाहर की सम्मिलित सेना से भिड़ जाना उचित नहीं समझा और जवाहर से समझौता कर वह अपने राज्य को वापस लौट गया।[२]

(६) मराठों के अधिकार क्षेत्र पर चढ़ाईयां:—

जब जवाहरसिंह मराठों को उत्तर भारत से बाहर निकालने के लिए मराठा विरोधी आयोजन बनाने के लिए पुष्कर रवाना हुआ, उसी समय चम्बल पार का जो प्रदेश उसने जीत कर अपने आधीन कर लिया था, उसमें मराठों ने वहां उधम मचा कर गड़बड़ पैदा कर दी और उसे वापस जीत लिया।[३] मावण्डा युद्ध में माधोसिंह से पूर्णतया पराजित होने पर भी वह सर्वथा निराश होने वाला नहीं था। उसने पुनः मराठों के अधिकार क्षेत्रों पर चढ़ाई प्रारम्भ कर दी। उसने दानशाह के नेतृत्त्व में एक सिक्ख सेना जनवरी १, १७६८ ई० को पहाड़ गांव पर हमला करने के लिए भेजी। दानशाह ने बालाजी गोविन्द को युद्ध में पराजित कर दिया। वहाँ से भाग कर बालाजी गोविन्द ने कोटेरा में शरण ली।[४]

इसी बीच माधोसिंह के पुनः आक्रमण की सम्भावना से जवाहर भी उससे युद्ध करने के लिए तैयारी करने लगा था, तथा कामा के युद्ध के बाद, उसका माधोसिंह से समझौता हो जाने के बाद, उसने पुनः मराठी क्षेत्रों पर चढ़ाई प्रारम्भ की। अपने स्वामिभक्त सेनापति रैंने मादे को उसने पड़ौस के ही एक राजपूत सरदार के किले पर अधिकार करने भेजा, जो कोई डेढ़ महीने में उस पर अधिकार कर पाया।[५] इन्हीं दिनों में जाट सेना भदावर क्षेत्र में पहुँची और वहाँ पुनः अपना आधिपत्य स्थापित

---

१. जाट्स०, पृ० २१४।
२. रैंने०, पृ० ७१; जाट्स०, पृ० २१४–२१५।
३. पे० द०, २९, प० सं० ७५, ८४।
४. पे० द० (नई), ३, प० सं० १४६।
५. रैंने०, पृ० ७२।

करने को प्रयत्नशील हुई। तद्नन्तर जाट सेना ने अटेर का घेरा डाला और उस पर अधिकार करने के बाद मराठों के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने के लिए मई, १७६८ ई० में जवाहरसिंह ने गोहद के जाट राणा से समझौता किया। जाट सेना की गतिविधियों में तेजी लाने के लिए जून, १७६८ ई० के अन्तिम सप्ताह में जवाहरसिंह स्वयं भिण्ड पहुँचा और कुछ समय तक वहीं ठहरे रहने के बाद वह तो वापस लौट गया। जुलाई, १७६८ ई० के उत्तरार्द्ध में सिक्ख सेनापति दानशाह और जवाहरसिंह का छोटा भाई रतनसिंह भी भिण्ड में जाट सेना के साथ आ मिले, तब सम्मिलित रूप से तीन हजार सेना के साथ इन्होंने धुवा के किले का घेरा डाला। इसके कुछ ही दिनों बाद एकाएक जवाहरसिंह के मारे जाने के समाचार पहुँचे। जवाहरसिंह के मनोनीत उत्तराधिकारी रतनसिंह को तत्काल ही वापस डीग लौट जाना पड़ा और इस क्षेत्र में जाट सेना की गतिविधियां शिथिल हो गई।[1]

---

६ जवाहरसिंह का अन्त और उसका मूल्यांकन

(१) जवाहरसिंह की मृत्यु:—

वीर और साहसी जवाहर जो अपने समय में उत्तरी भारत का एक शक्तिशाली राजा था, जिसके सैनिक बल से प्रभावित हो अँग्रेजों ने उसके साथ दोस्ती के लिए हाथ बढ़ाया था। भरतपुर के ऐसे देदीप्यमान सितारे का करुणाजनक अन्त हुआ।

जनसाधारण में प्रचलित किवंदन्तियों के आधार पर ग्राउज ने अपनी पुस्तक "ए डिस्ट्रीक मैमोयर्स आफ मथुरा" में लिखा है कि "जयपुर के राजा के इशारे पर किसी व्यक्ति ने जवाहर को आगरा में कत्ल कर दिया।"[1] कानूनगो के विचारानुसार जयपुर के साथ हुए युद्ध के आठ महीने बाद ही उसका यों कत्ल किया जाने पर इस प्रकार का संदेह होना स्वाभाविक है।[2] यह सत्य है कि जयपुर का राज्य परिवार इससे सदैव भयभीत रहता था, उन्हें जवाहर के मारे जाने पर अत्यधिक प्रसन्नता भी हुई होगी, किन्तु इस बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है कि उन्होंने ही ऐसा कराया हो। चहार गुलजार–ए–शुजाई के लेखक के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि जवाहर ने एक सैनिक को अपना सहयोगी एवं परम मित्र बना लिया था। उसे उच्च पद भी दिया गया। इस सैनिक से कोई अपराध या अनुचित कार्य हो गया था। इस कारण राजा ने उसको अपमानित करके उसके साथियों के समक्ष उसे नीचा दिखाया। अतः इस व्यक्ति ने अपने सम्मान के प्रति सजग होकर जवाहरसिंह का किसी भी प्रकार से कत्ल करने का निश्चय किया। एक दिन जाट राजा अपने

---

१. ग्राउज०, द्वि० सं० (१८८० ई०), पृ० ३६।
२. जाट्स०, पृ० २१७।

कुछ साथियों के साथ शिकार के लिए गया, तब वह व्यक्ति भी उसी समय घोड़े पर सवार हो ढाल और तलवार ले वहाँ जा पहुँचा तथा वहाँ कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ जवाहरसिंह असावधान खड़ा था, तब इस व्यक्ति ने वहाँ जाकर जवाहरसिंह को अपनी तलवार से मार गिराया और चिल्लाया "मेरी बदनामी और मेरा जो अपमान तुमने किया था, उसकी यह सजा है।"[१]

इसी प्रकार 'सियार-उल-मुतखरिन' में गुलाम हुसैन लिखता है कि "जवाहरसिंह ने सदा (? हैदर) नाम के एक चौबदार को अपने सरदारों से भी ऊँचा अधिकार दे दिया था, जिससे उन लोगों को अत्यन्त ईर्ष्या हुई। उन्हीं सरदारों ने किसी व्यक्ति को भड़का कर जवाहर को कत्ल करा दिया।"[२] लेकिन उक्त दोनों ही लेखकों के इन कथनों की पुष्टी अन्य किसी समकालीन प्रामाणिक एतिहासिक ग्रंथ से नहीं होती। अतः इन्हें भी मान्य नहीं किया जा सकता है।

रैंने मादे उस समय जवाहर की सेवा में था, तथा इस घटना को उसने स्वयं देखा था। उसने अपने संस्मरण में लिखा है कि "नगर के बाहर जवाहरसिंह ने एक सुन्दर बाग लगवाया था। उसी में एक दिन वह हाथियों की लड़ाई देखने गया। उस समय एक ऐसे व्यक्ति ने तलवार का वार किया, जिसे अभी तक कोई व्यक्ति पहचानने में समर्थ नहीं हुआ है। उस आदमी ने तलवार के एक ही वार से राजा का सिर काट डाला। राजा के सब आदमी तत्क्षण ही हत्यारे पर टूट पडे और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, जिससे उसको पहचानना भी सम्भव नहीं रहा।"[३]

सुदूर बंगाल में राजा शिताबराय को भी यही सूचना मिली थी कि हाथियों की लड़ाई देखते समय जवाहरसिंह की हत्या कर दी गई।[४] मजमुल-अखबा में हरसुखराय ने भी ऐसी बात की पुष्टि की है कि जब जवाहरसिंह हाथियों की लड़ाई देख रहा था, तब एक दुष्ट ने उसकी हत्या कर दी, उस हत्यारे का नाम नहीं मालूम हो सका है।[५] यों स्पष्टतया इस सम्बन्ध में रैंने मादे का कथन ही सही और विश्वसनीय जान पड़ता है।

---

१. बहार० ईलियट०, ८, पृ० २२६।
२. सियार०, ४, पृ० ३४; जाट्स० पृ० २१८।
३. रैंने०, पृ० ७२।
४. कैलेंडर०, २, प० सं० ११००।
५. हरसुख० ईलियट०, ८, पृ० ३६५।

इस प्रकार अगस्त, १७६८ ई० के प्रथम सप्ताह के अन्त के लगभग[1] जवाहरसिंह की हत्या की गई और उसके साथ ही उस नवोदित जाट राज्य का शौर्य, साहस और सौभाग्य का भी अन्त हो गया। पूर्ण प्रखरता से तप रहा जाट राज का सौभाग्य सूर्य अब बड़ी तेजी से अस्ताचल की ओर अग्रसर हुआ और जाट-जीवन-संध्या दुर्भाग्य और विरोधों रूपी बादलों से अंधकारपूर्ण ही रही।

(२) उसका चरित्र और उपलब्धियाँ:—

जवाहरसिंह अपने पिता की ही भांति एक वीर और निर्भीक सैनिक, दु:साहसी सेनापति और कठोर शासक था। उसे न मृत्यु से डर और न ईश्वर का भय था। युद्धप्रिय जवाहर कठिन से कठिन परिस्थितियों में और दुरूह उलझनों से भी नहीं घबराता था। उसने अपने-जीवन काल का अधिकांश समय युद्धों में ही बिताया और प्रत्येक युद्ध में उल्लेखनीय वीरता का परिचय दिया। इन सारे युद्धों में उसने अपनी सेना का नेतृत्व किया। उसके शासन काल में उसकी सेना में कोई विद्रोह या उपद्रव नहीं हुआ।[2]

अपने समूचे शासन–काल में जवाहरसिंह किन्हीं तीन-चार महीनों तक लगातार शान्तिपूर्वक राजधानी में नहीं रहा। निरन्तर युद्ध रत रहते हुए भी, उसने अपने राज्य के शासन प्रवन्ध की ओर बराबर ध्यान दिया। यद्यपि वह शत्रुओं के साथ बराबर युद्ध करता रहा, उसने अपने विरोधी सरदारों का दमन किया और उसका प्रतिद्वन्द्वी भाई नाहरसिंह जयपुर को भाग गया तथापि उसके राज्य क्षेत्र में

---

१. 'चहार-इ-गुलजार' के आधार पर कानूनगो ने जून-जुलाई, १७६८ ई० (सफर, ११८२ हि०) में जवाहरसिंह की हत्या होना लिखा है (जाट्स० पृ० २१७)। यदुनाथ सरकार के अनुसार अगस्त माह के प्रारम्भिक दिनों में यह घटना घटी थी। (फाल०, २, पृ० ३५१)। अगस्त २, १७६८ ई० को लिखे गये एक पत्र में जवाहरसिंह की सेना का उल्लेख है, जिससे स्पष्टतया प्रामाणित होता है कि तब तक जवाहरसिंह जीवित था (पे० द० (नई), ३, प० सं० १६३)। पुन: अगस्त ११, १७६८ ई० को विश्वासराव लक्ष्मण के नाम लिखे गये केसरीसिंह के पत्र में जवाहरसिंह की मृत्यु के समाचार की सूचना दी गई है (केलकर०, पृ० ३६८–३६९, प० सं० ४६), जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह घटना उससे कुछ ही दिन पहले अगस्त ७–८, १७६८ ई० के लगभग हुई होगी।

२. वैण्डल०, पृ० १०६; जाट्स०, पृ० २१८–२१९।

कभी कहीं कोई अशान्ति नहीं हुई।[1] आय-व्यय का ब्यौरा न देने वालों को दण्ड देकर वित्तीय व्यवस्था में भी उसने सुधार किये। कला की ओर भी जवाहरसिंह ने पूरा-पूरा ध्यान दिया। उसने पिता सूरजमल की मृत्यु के बाद गोवर्धन में उसकी स्मृति में जवाहरसिंह ने कुसुम-सरोवर के तट पर राधा कुण्ड के निकट एक अत्यधिक सुन्दर विशाल छत्री का निर्माण करवाया, जो ऐतिहासिक व्रज-प्रदेश में स्थापत्य कला की जाट शैली का अनुपम नमूना है।[2] उसने अनेक बाग-बगीचे भी लगवाये थे।[3]

राज्य की शान्ति और सुव्यवस्था के लिए सैनिक शक्ति का महत्त्व समझ करके उसने अपनी सेना को यूरोपीय ढंग से संगठित और सुशिक्षित किया। यूरोपीय सेनानायकों व सैनिक दलों को अपनी सेवा में रखा।[4] वह सैनिकों आदि को समय पर वेतन दे दिया करता था।[5] सैनिकों का उत्साहवर्द्धन के लिए समय-समय पर उनको पुरस्कार देता और वेतन वृद्धि भी करता रहता था।[6] उसने राज्य के सभी विरोधी तत्वों को समाप्त कर दिया था, तथा अपने पीछे एक सुव्यवस्थित राज्य छोड़ा था। उसकी सेना में पूर्ण रूप से अनुशासन व्याप्त था। यही कारण है कि उसके अयोग्य और अत्यधिक विलासी उत्तराधिकारी रतनसिंह की भी आज्ञा का पालन उसकी सेना ईमानदारी और स्वामीभक्ति के साथ करती रही।[7]

इतना सब कुछ होते हुए भी उसके स्वभाव और चरित्र में कई ऐसे दोष थे, जिन्होंने उसके गुणों पर अपनी काली छाया डाल दी। वह अपने पिता के विपरीत अत्यधिक अपव्ययी, शान-शौकत दिखाने को व्यग्र, विलासी और कामुक था।[8] वह रुपये का कोई मूल्य नहीं समझता था। उन्हें वह पानी की तरह बहाता था। युवक राजा पर मुगलों की शान-शौकत, रंग-रैलियां, रहन-सहन, खान-पान आदि का पूर्ण प्रभाव था। पहनाव और रहन-सहन में वह मुगल शाहजादों का अनुसरण करता

---

१. जाट्स०, पृ० २१८-२१९; यदु०, पृ० ३२७।
२. ग्राउज०, पृ० १६१, २८५।
३. रैने०, पृ० ७२; यदु० पृ० ३३१।
४. देगम०, पृ० ६; रैने०, पृ० ६९।
५. इण्टल०, पृ० १०६।
६. रैने०, पृ० ७२।
७. जाट्स०, पृ० २१९।
८. इण्डस०, पृ० १०६; फाल०, २, पृ० ३२२।

था ।[१] यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार समाज में भी इस प्रकार की प्रवृतियां आने लगीं थीं । कानूनगो के अनुसार देश में सभी नये-नये लिबासों, तौर-तरीकों या आचार-विचार की पूर्ण छाया कुम्हेर और भरतपुर में देखने को मिलती थी । इन केन्द्रों में नये समाज की स्थापना के साथ जाटों में रीति-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान, भाषा आदि अन्य सभी क्षेत्रों में एकदम परिवर्तन आने लगा था ।[२]

जाट राजाओं में वह सबसे अधिक शक्तिशाली था । आगरा की जुमा मस्जिद को उसने बाजार के रूप में परिणत कर दिया था । आगरा में ही उसने कसाइयों की दुकानें बन्द करवा दीं तथा पशु वध बिल्कुल निषेध कर दिया गया । मुसलमान धर्म के लोगों के साथ वह कठोरता का व्यवहार करता था । अजां देने की सख्त मनाई कर दी थी । अजां देने पर एक व्यक्ति की आगरा में जवाहरसिंह ने उसकी जबान कटवा दी, परन्तु कानूनगो के अनुसार सूरजमल के इस सुयोग्य पुत्र के लिए वास्तव में यह एक अशोभनीय बात थी, क्योंकि सूरजमल ने आहत शमशेर बहादुर को शरण दी थी और उसका देहान्त हो जाने पर कुम्हेर में उसकी कब्र पर, अस्थियों का आदर करके उन पर मकबरा और मस्जिद बनवाये थे ।[३]

जवाहरसिंह अत्यधिक विलासी और कामुक था । उसके इस दोष ने ही उसके अन्त को निमन्त्रण दे दिया था । वह स्वयं नाहरसिंह की सुन्दर स्त्री पर आसक्त था, अतः जब नाहरसिंह की मृत्यु हो गई तब उसकी विधवा को अपने हरम में रखने के उद्देश्य से ही उसने जयपुर राजा माधोसिंह से उसकी मांग की ।[४] माधोसिंह उसकी यह मांग पूरी नहीं कर सका एवं दोनों में मनमुटाव हो गया । इसी प्रकार इमाद-उल-मुल्क की स्त्री से भी वह प्रेम करता था ।[५] लेकिन उसमें सबसे बड़ी कमी यह थी कि उसमें उपयुक्त कूटनीति और अत्यावश्यक दूरदर्शिता का पूर्ण अभाव था । वह कभी-कभी अत्यधिक उदार हो जाता था तो कभी छोटी गलती के लिए भी भयंकर दण्ड दे देता था । यों ही उसने अपने भाई रतनसिंह के पुत्र के जन्मोत्सव पर वैर के

---

१. फाल०, २, पृ० ३२२; यदु० पृ० १६२ ।

२. जाट्स०, पृ० २२२ ।

३. जाट्स०, पृ० २२०–२२१ ।

४. वंश०, ४, पृ० ३७१८; जयपुर०, पृ० ३१८ ।

५. वैण्डल०, पृ० ६८ ।

बहादुरसिंह और फर्रुखनगर के नवाब मुसावी खां जैसे खतरनाक राजनैतिक कैदियों को भी मुक्त कर दिया ।[1] अतः निष्कर्ष रूप में कानूनगो के अनुसार जहाँ उसके मित्रगण उसे एक योग्य राजा, साहसी, तड़क-भड़क का प्रेमी और उदार व्यक्ति के रूप में देखते थे और उसके शत्रु उसे जिद्दी, खुंखार, तानाशाह, भूखा भेड़िया तथा अविश्वसनीय छल-कपटी व्यक्ति कहते थे ।[2]

वस्तुतः ईसा की १८वीं शती के मध्य में उत्तर भारतीय राजनैतिक आकाश में जवाहरसिंह धूमकेतू की तरह एकाएक चमका और उसी तरह सहसा पूर्णतया लुप्त भी हो गया । पुनः इस उग्र ग्रह के यों प्रकट होने और बाद में वैसे ही अदृष्ट हो जाने के अनेकों अनपेक्षित प्रभाव और परिणाम हुए, जिन्हें तत्कालीन इतिहास के पृष्ठों में देखा और समझा जा सकता है ।

(३) सन् १७६८ ई० में भरतपुर राज्य का विस्तार :

सूरजमल की मृत्यु पर जवाहरसिंह के अधिकार में जो जाट राज्य आया उसकी सीमाएं रैने माद के अनुसार मोटे तौर से इस प्रकार थी—"गंगा का दाहिना तट इस राज्य की पूर्वी सीमा थी । चम्बल नदी इसकी दक्षिणी सीमा बनाती थी । आगरा सूबे का जो पश्चिमी भाग जयपुर राज्य के अधीन था, वह इस राज्य की पश्चिमी सीमा निर्धारित करता था । इस राज्य की उत्तरी सीमा दिल्ली सूबे के साथ लगती थी । यों पूर्व से पश्चिम तक इसकी लम्बाई १०० कोस की थी और उत्तर से दक्षिण तक इसका विस्तार ७० कोस था ।"[3] इस प्रकार कानूनगो के शब्दों में "भरतपुर के प्रारम्भिक राज्य के साथ ही आगरा, धौलपुर, रोहतक, फर्रुखनगर, मेवात, रेवाड़ी, गुड़गाव और मथुरा के जिले भी सूरजमल के मृत्यु समय उसके जाट राज्य के आधीन थे ।"[4] अलवर किला और क्षेत्र को भी तब ही जवाहरसिंह ने माधोसिंह से छीन कर जाट राज्य में सम्मिलित कर दिया था ।[5]

---

१. जाट्स०, पृ० २१६–२२० ।

२. जाट्स० पृ० २२० ।

३. रैने०, पृ० ४१ ; जाट्स०, पृ० १६७ ।

४. जाट्स०, पृ० १६७ ।

५. पे० द० (नई), १, प०सं० १८७; पे० द०, २७, प० सं० १२८; फास०, २, पृ० ३२१ ।

जवाहरसिंह ने राज्यारोहण के समय जाट राज्य के उपर्युक्त विस्तार क्षेत्र में जवाहरसिंह ने निम्नलिखित क्षेत्र और भी जोड़ दिये थे–आगरा से दक्षिण में और चम्बल नदी के दोनों तटों पर फैला हुआ समूचा भदावर क्षेत्र, चम्बल के दक्षिणी तट पर सिकरवार, कछवाधार और तंवरधार क्षेत्र, डड़ोली, खितोली के साथ ही उत्तरी मालवा का भाग, काल्पी–जालौन का सारा प्रदेश ।[1]

आधार ग्रंथ-सूची

अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

आधार ग्रंथ-सूची

प्राथमिक और समकालीन ग्रन्थ

(अ) अप्रकाशित

(१) फारसी

(१) अहवाल-ए-सलातीन-इ-मुताखिरीन (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(२) अजाएब-उल्-आफाक (ब्रिटिश म्यूजियम नं० ओरियण्टल १७७६ हस्तलिखित)

(३) तजकीरात-उस्-सलातीन-ए-चगताई—मुहम्मद हादी कामवर खाँ कृत, जिल्द २ (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(४) तारीख-ए-आलमगीर सानी—यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(५) तारीख-ए-हिन्द—रुस्तम अली खाँ कृत। (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(६) तारीख-ए-शाकीर खानी—शाकीर खाँ कृत। (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(७) दिल्ली क्रानिकल—यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(८) फतूहात-ए-आलमगीरी—ईश्वरदास नागर कृत। (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(९) मीरात-ए-आफताबनुमा—अब्दुर्रहमान कृत। (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

१. फ्रेंच

(१) एन एकाउण्ट ऑफ दी जाट किंगडम—फादर वेन्डल कृत, यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद। रघुवीर (लायब्रेरी, सीतामऊ)

३. राजस्थानी

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात, जिल्द ३ (रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)

(ब) प्रकाशित

१. फारसी

(१) चहार गुलजार-इ-शुजाई हरिचरणदास कृत। (ईलियट और डॉसन, जिल्द ८)

(२) नजीबुद्दौला—सैय्यद नूरुद्दीन हुसैन कृत, अब्दुर्रशीद कृत अंग्रेजी अनुवाद, अलीगढ़।

(३) नजीबुद्दौला रुहेला चीफ—बिहारीलाल मुंशी कृत, यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद। (इस्लामिक कलचर, जिल्द १०)

(४) मग्रासीर-इ-ग्रालमगीरी—यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद।

(५) मजमूल अखबार—हरसुख राय कृत (ईलियट और डॉसन, जिल्द ८)

(६) लाईफ ऑफ नजीबुद्दौला—सैय्यद नूरुद्दीन हुसैन कृत, यदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद (इस्लामिक कल्चर, जिल्द ७)

२. फ्रेंच

(१) मेमोयर्स ऑफ रैने मादे—यदुनाथ सरकार कृत अंग्रजी अनुवाद (बगाल पास्ट एण्ड प्रजेण्ट, अप्रेल-जून, १९३७, जिल्द ५३, भाग २ क्र० सं० १०६)

३ अंग्रेजी

(१) केलेण्डर ऑफ पर्शियन कारेस्पाण्डेन्स, जिल्दें १–२।

(२) पर्शियन रिकार्ड्स ऑफ मराठा हिस्ट्री—देहली अफेयर्स, जिल्द १।

(३) स्टोरिया डी मोगोर, मनुची कृत-विलियम इर्विन द्वारा अनुवादित एवं संपादित, जिल्दें १–४ (बिब० इण्डिका)।

४. मराठी

(१) अठारवीं शती के हिन्दी पत्र—डा० काशीनाथ केलकर द्वारा संपादित।

(२) चन्द्रचूड दफ्तर—द० वि० आपटे द्वारा संपादित, जिल्द १ (पूना १९१९ ई०)

(३) हिंगणे दफ्तर–जी० एस० सरदेसाई द्वारा संपादित, जिल्द २ (पूना १९४७ ई०)

(४) होल्कर शाहीच्या इतिहासाचीं साधनें–वा० वा० ठाकुर द्वारा संपादित, जिल्द १।

(५) सलेक्शन्ज फ्राम पेशवा दफ्तर–जी० एस० सरदेसाई द्वारा संपादित, जिल्दें २१, २७, २९।

(६) सलेक्शन्ज फ्राम पेशवा दफ्तर (न्यू सिरीज)–पी० एम० जोशी द्वारा संपादित, जिल्दें १–३।

(७) मराठाच्या इतिहासाचीं साधनें–वि० का० राजवाड़े द्वारा संपादित, जिल्द १।

५. राजस्थानी

(१) वंशभास्कार–सूर्यमल मिश्रण कृत जिल्द ४।

(२) सलेक्शन्ज फ्राम बनेड़ा ग्रारकाइव्ज–संपादक, डा० एल० पी० माथुर ग्रौर डा० के० एस० गुप्ता।

ग्राधुनिक ग्रन्थ

(ग्र) ग्रंग्रेजी

(१) ग्रहमदशाह दुर्रानी–गंडासिंह कृत।

(२) ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर्स ग्रॉफ मथुरा–एफ० एस० ग्राउज कृत (द्वितीय संस्करण)

(३) एनल्ज एण्ड एन्टीक्विटीज ग्रॉफ राजस्थान–जेम्स टॉड कृत, ग्राक्सफोर्ड, १९२०।

(४) एशियाटिक एन्यूग्रल रजिस्टर, १८०० ई०।

(५) ए हिस्ट्री ग्रॉफ दी सिक्ख–जे० डी० कनिंगम कृत।

(६) थर्टी डिसायसिव बेटल्ज ग्राफ जयपुर–ठाकुर नरेन्द्रसिंह कृत।

(७) दी इवोल्यूशन ग्रॉफ दी एडमिनिस्ट्रेशन ग्रॉफ दी फारमर स्टेट ग्रॉफ भरतपुर–के० डी० एल० गुप्ता कृत।

(८) न्यू हिस्ट्री ग्राफ दी मराठाज्–जी० एस० सरदेसाई कृत, जिल्द २।

(९) पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स इन दी मुगल कोर्ट (१७०७–१७४० ई०)–डा० सतीशचन्द्र कृत।

(१०) फाल ग्रॉफ दी मुगल एम्पायर–यदुनाथ सरकार कृत, जिल्दें २, ३ (द्वितीय संस्करण)

(११) बेगम समरू–बी० एन० बेनर्जी कृत।
(१२) भरतपुर अप टू १८२६–डा० राम पाण्डे कृत।
(१३) मालवा इन ट्रान्जिशन–डा० रघुबीरसिंह कृत।
(१४) लेटर मुगल्स–विलियम इर्विन कृत, जिल्दें १–२।
(१५) शुजाउद्दौला–डा० ए० एल० श्रीवास्तव कृत, जिल्दें १–२।
(१६) हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब–यदुनाथ सरकार कृत, जिल्दें ३, ५।
(१७) हिस्ट्री ऑफ जयपुर स्टेट–यदुनाथ सरकार कृत (अप्रकाशित, रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ)
(१८) हिस्ट्री ऑफ जाट्स–डा० कालिकारंजन कानूनगो कृत।
(१९) हिस्ट्री ऑफ सिख्स—डा० हरीराम गुप्ता कृत।

(ब) हिन्दी

(१) ईश्वरीसिंह चरित्र–नरेन्द्रसिंह कृत।
(२) जोधपुर राज्य का इतिहास–गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत, जिल्द २।
(३) पूर्व आधुनिक राजस्थान–डा० रघुबीरसिंह कृत।
(४) मारवाड़ का इतिहास–विश्वेश्वर नाथ रेऊ कृत, जिल्द १।
(५) यदुवंश–गंगासिंह कृत।
(६) वीर विनोद–कविराजा श्यामलदास कृत, खण्ड २।

———

अनुक्रमणिका

शुद्धि–पत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
२	१७	केशवराम	केशवराय
४	१८	सम्भालो	सम्भाली
५	फु० नो० सं० २	मग्रसीर	मग्रासीर
७	१३	सघर्ष	संघर्ष
७	२५	जयपुर	आम्बेर
९	६	पूण	पूर्ण
९	फु० नो० सं० ३ पं० ७	परस्थिति	परिस्थिति
१०	२४	पड़ास	पड़ौस
१४	४	उसी	उस
१८	५	विराधी	विरोधी
२०	१३	सधि	संधि
२१	४	सगठन	संगठत
२१	११	सेना	सेवा
२३	फु० नो० सं० २	।ल०	२. फाल०
१३	५	मैंनपुर	मैंनपुरी
१४	९	में	मैं
३४	१९	सधि	संधि
४२	२	सिक्स	सिक्ख
४२	१९	हेवेली	हवेली
४५	१५	पूव	पूर्वी
५२	फु० नो० सं० ३, पं० ३	पोलियट	पोलियर
५२	फु० नो० सं० ३, पं० ५	अवध ने	अवध के
६२	२१	गोहद क	गोहद के
६३	१	अनावश्यक	अत्यावश्यक
७२	७	जवाहर क	जवाहर के
८९	२०	मज़मुल-अखबा	मज़मुल-अखबार